॥ ओ३म् ॥

# दयानन्दसन्देश

## आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र


Date of Printing = 05-11-23

प्रकाशन दिनांक = 05-11-23

**नवम्बर २०२३**

वर्ष ५३ : अङ्क १

दयानन्दाब्द : १९९

विक्रम-संवत् : कार्तिक-माघ २०८०

सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२४

**संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य**

प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता



कार्यालय :

**दयानन्दसन्देश** (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,

खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१

चलभाष : ९६५०५२२७७८

E-mail : aspt.india@gmail.com



कुल पृष्ठ २८

एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये

पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये

आजीवन शुल्क ११००) रुपये

विदेश में ५०००) रुपये


## इस अंक में


- वेदोपदेश २
- नीति वचन ३
- समलैंगिकता पर आर्य समाज के सवाल ? ४
- ब्रह्मचर्य ६
- सांख्यदर्शन में शरीरों का वर्णन-३ ७
- रक्त सम्बन्धी विवाह पर मुस्लिम देशों..... ९
- अत्यंत रोचक ज्ञानवर्धक चर्चा १२
- मृत्यु का अद्‌भुत दृश्य १४
- भारत में कम्युनिस्ट-घुसपैठ १५
- भगत सिंह के.... सरदार अर्जुन सिंह १८
- क्या इस जन्म से पहले हमारा अस्तित्व... २१
- सत्यार्थ प्रकाश का संक्षिप्त परिचय २४



**विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।**



**सत्यार्थप्रकाश**

प्रचार संस्करण - ४००० रुपये सैकड़ा

स्पेशल (सजिल्द) - ६००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

**वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द**

**वेदोपदेश—आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।**
**महत्तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥**

—ऋ० ३।३८।४

शब्दार्थ —**आ+तिष्ठन्तम्** = सब ओर रहने वाले भगवान् को **विश्वे** = सभी **परि** = सब प्रकार से **आभूषन्** = शोभित करते हैं। वह **स्वरोचिः** = स्वप्रकाश **श्रियः** = शोभाओं को **वसानः** = धारण करता हुआ **चरति** = संसार को चलाता है। उस **वृष्णः** = सुखवर्षक असुरस्य प्राणाधार भगवान् का **तत्** = वह **महत्** = महान् **नाम** = यश है कि वह **विश्वरूपः** = सर्वस्रष्टा **अमृतानि** = अमृतों का, जीवों का, प्रकृति का **तस्थौ** = अधिष्ठाता है।

**व्याख्या**—भगवान् स्थित है, गतिरहित है, किसी एक स्थान पर स्थित नहीं, वरन् सर्वत्र उपस्थित है। सूर्य-चन्द्र आदि देवों की कान्ति और आभा देखने योग्य है। ये सारे आभावान् पदार्थ भगवान् की शोभा बढ़ा रहे हैं, मानो उसकी महिमा गा रहे हैं। कहीं किसी को भ्रम न हो जाए कि यह सूर्य-चन्द्र आदि से प्रकाशित होता है, इस भ्रम का वारण करने के लिए कहा कि वह **'स्वरोचिः'** स्वप्रकाश है। किसी दूसरे से प्रकाशित नहीं होता। स्वप्रकाश होने के कारण तथा इन सबका मूल प्रकाश होने के कारण सारी शोभाओं को वह धारे हुए है, अर्थात् संसार में जहाँ कहीं शोभा, कान्ति, तेज, उत्कर्ष है—वह वास्तव में परमेश्वर का है। जब सभी प्रकार का उत्कर्ष परमेश्वर का है, तो आनन्द, सुख भी उसी का है, इसलिए यहाँ और वेद में अन्यत्र अनेक स्थलों पर उसे 'वृषा' = सुखवर्षक कहा है। जीवनोपयोगी सारी सामग्री का स्वामी वह है, अतः असुर = असु+र = प्राणदाता = जीवनदाता भी वही है।

संसार में जितने रूप हैं, इनका निरूपण करने, चित्रित करने वाला वही है, अतः वह विश्वरूप है ।

जीव के लिए तथा जीव-प्रकृति के संयोग से वह संसार बनाता है, अतः वह इनका अधिष्ठाता भी है ।

महात्मा श्वेताश्वतर ने मानो इस मन्त्र के एक अंश को हृदय में रखकर कहा—

**सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्य्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वदनड्वान् ।**
**एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः॥४॥**
**यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्याँश्च सर्वान् परिणामयेद्यः ।**
**सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणाँश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ॥५॥**

—श्वेता० ५

जिस प्रकार सूर्य ऊपर, नीचे, तिरछी सभी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ चमकता है, इसी

भाँति वह सर्वश्रेष्ठ भगवान् परमेश्वर अकेला ही कारण तथा स्वभावों का अधिष्ठाता है। जो विश्वयोनि=विश्वरूप स्वभाव का परिपाक करता है और पकने योग्य सभी पदार्थ-धर्मों का यथायोग्य विनियोग करता है, वह अकेला ही इन सबका अधिष्ठाता है।

ऋषि ने वेदमन्त्र का आशय समझाने के लिए सूर्य का दृष्टान्त दिया है। सूर्य पृथिवी आदि ग्रहों, चन्द्र आदि उपग्रहों को प्रकाशित करता हुआ स्वयं चमकता रहता है। इसी प्रकार परमदेव परमेश्वर--**'श्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः'**-सब शोभाओं को धारण करता हुआ स्वप्रकाश है।

सूर्य एक स्थान पर रहता हुआ सभी सूर्यादि स्वमण्डलान्तर्गत ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रादि प्रकाशाप्रकाश-पुंजों को अपने आकर्षण-विकर्षण-सामर्थ्य से नियन्त्रण में रखता है, परन्तु, उसका प्रभाव अतीव विस्तृत होता हुआ भी संकुचित है, ससीम है। इस ब्रह्माण्ड में ऋग्वेद ९।११४।३ के शब्दों में-**सप्त दिशो नाना सूर्याः**-इन सात दिशाओं में अनेक सूर्य हैं। प्रत्येक सूर्य का प्रभाव परिमित ही रहेगा, किन्तु अनन्त सूर्यों को प्रकाशित करनेवाले भगवान् की महिमा का क्या कहना ! सूर्य का प्रभाव अनित्य पदार्थों पर है, किन्तु भगवान्-**'विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ'** विश्वरूप सभी अमृतों=अविनाशी जीवों तथा प्रकृति का अधिष्ठाता है, अर्थात् उनका यथायोग्य विनियोग करने में समर्थ है।

कई मीमाँसकों का मत है कि प्रत्येक वेदवाक्य में विधि या निषेध अवश्य होना चाहिए। इस सिद्धान्त को लेकर वे प्रत्येक वेदमन्त्र के साथ योग्यतानुसार 'ऐसा करो' या 'ऐसा मत करो' लगा देते हैं । कदाचित् इसी भाव से श्वेताश्वतर महर्षि ने इसका भाव बताते हुए दूसरे स्थान पर कहा है-

**यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वम् ।**
**तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥**

-श्वेता० ४।११

जो प्रत्येक कारण तथा स्थान पर अकेला ही अधिकार रखता है, जिसमें यह सब संयुक्त वियुक्त होता रहता है, मनुष्य उस उत्तम दाता पूज्य ईश्वर देव को धारण करके इस शान्ति को पूरी तरह पाता है।

इस शान्ति-प्राप्ति के लिए भगवान् को धारण करना चाहिए । ❑❑

## नीति वचन

- वचन रूपी जो बाण मुख से निकलते हैं, उन बाणों द्वारा घायल व्यक्ति रात दिन सोच करता है। वे बाण केवल मर्मस्स्थल में चोट पहुँचाने वाले होते हैं, किसी दूसरी जगह चोट नहीं पहुँचाते। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी कटु वचनों का किसी के प्रति व्यवहार नहीं किया करते। *-विदुरनीति*
- कार्य करने से पहले उसके परिणाम पर विचार कर लेना चाहिए। बिना विचारे शीघ्रता से किए गए काम का फल जीवन भर हृदय को जलाता रहता है तथा काँटे की तरह चुभता रहता है। *-भर्तृहरि*
- गुप्त दान देना, घर में आए सत्पुरुषों का स्वागत करना; उपकार करके चुप रहना, कृतज्ञता प्रकट करना, धन पाकर गर्व न करना और पराई चर्चा में उसके मानापमान का ध्यान रखना-ये तलवार की धार पर चलने के समान कठिन व्रत है। *-भर्तृहरि*

# समलैंगिकता पर आर्य समाज के सवाल ?

—धर्मपाल आर्य

**समलैंगिक विवाह के विरोध में सुप्रीम कोर्ट को भेजी गयी आर्यसमाज की दलीलें—**

देश की सबसे बड़ी अदालत ने समलैंगिक विवाह पर अपना फैसला सुना दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने समलैंगिक शादी को कानूनी मान्यता नहीं दी है। सुप्रीम कोर्ट ने ३-२ के बहुमत से फैसला देते हुए कहा कि यह विधायिका का अधिकार क्षेत्र है। सुप्रीम कोर्ट ने बाकी सिविल अधिकार के लिए जिम्मेदारी केंद्र सरकार पर डाली है।

कोर्ट ने स्पेशल मैरिज एक्ट में भी बदलाव से मना किया है। शुरू में जब चीफ जस्टिस चंद्रचूड़ ने अपना फैसला पढ़ना शुरू किया था तो समलैंगिक कपल को उम्मीद जगी थी कि उन्हें बच्चे गोद लेनें की इजाजत मिल सकती है लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने यह परमिशन भी नहीं दी। इससे पहले राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने समलैंगिकों को बच्चा गोद लेने की इजाजत देने का विरोध किया था। आयोग ने कोर्ट में कहा था कि इस तरह का प्रयोग नहीं होना चाहिए। शोध के आधार पर तर्क दिया गया था कि समलैंगिक जिस बच्चे का पालन करेंगे उसका मानसिक और भावनात्मक विकास कम हो सकता है।

दरअसल इस पूरे प्रकरण में समलैंगिक विवाह के विरोध और बच्चा गोद लेने की दलील पर पिछले दिनों आर्य समाज ने चीफ जस्टिस को कुछ दलीलें भेजी थीं। (ये तर्क दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से अपने अधिवक्ता के माध्यम से भेजे गए थे।) आर्यसमाज का मानना है कि ऐसे प्रयोग समाज में सिर्फ बुराई ही पैदा करेंगे। इस पूरे प्रकरण में आर्यसमाज द्वारा भेजी गयी दलील कुछ इस प्रकार थी—

चूँकि भारतीय संस्कृति में परिवार निर्माण की जिम्मेदारी उठाने के योग्य शारीरिक, मानसिक परिपक्वता आ जाने पर युवक-युवतियों का विवाह संस्कार कराया जाता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह कोई शारीरिक या सामाजिक अनुबन्ध मात्र नहीं है, यहाँ दाम्पत्य को एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधना का भी रूप माना गया है। इसलिए कहा गया है 'धन्यो गृहस्थाश्रम:' अर्थात सदगृहस्थ ही समाज को अनुकूल व्यवस्था एवं विकास में सहायक होने के साथ श्रेष्ठ नई पीढ़ी बनाने का भी कार्य करते हैं।

लेकिन समलैंगिक विवाह ऐसा नहीं है। यानि एक ही लिंग के लोगों के विवाह में क्या कोई शारीरिक अनुबंध होगा या सामाजिक अनुबंध ? ये सवाल सबके सामने होगा कारण समाज तो एक ही लिंग के लोगो के विवाह स्वीकृति नहीं देता! दूसरा यह लोग समाज के अनुकूल व्यवस्था एवं विकास में सहायक होने के साथ श्रेष्ठ नई पीढ़ी बनाने का भी कार्य कर पाएंगे? तो क्या ऐसे में भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह की व्याख्या या परिभाषा ही नही बदल जाएगी?

दलील में यह भी था कि धारा ३७७ प्रकृति के आदेश के खिलाफ यौन गतिविधि में लिप्त होने पर सजा का प्रावधान करती है। ऐसा साबित होने पर १० साल से लेकर उम्रकैद तक की सजा हो सकती है। अप्राकृतिक कृत्य पुरुष के साथ पुरुष करे या पुरुष महिला के साथ करे, इन दोनों ही स्थितियों में इस धारा ३७७ के तहत अपराध माना जाता है।

जबकि समलैंगिक विवाह एक ही लिंग के लोगों के विवाह में अप्राकृतिक कृत्य को क्या अपराध माना जाएगा? या फिर इसे अपराध से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाएगा? यदि ऐसा है तो एक ही धारा की अलग-अलग लोगों पर अलग-अलग व्याख्या कर क्या कानून के साथ खिलवाड़ नहीं होगा? सवाल ये भी है इस सेक्शन में अपराध की परिभाषा क्या होगी?

हमारे ग्रंथो में कहा गया है कि-'**धन्यो गृहस्थाश्रमः**' अर्थात सदगृहस्थ ही समाज को अनुकूल व्यवस्था एवं विकास में सहायक होने के साथ श्रेष्ठ नई पीढ़ी बनाने का भी कार्य करते हैं। धर्म शास्त्र और मनोविज्ञान कहता है कि बच्चे के संस्कार उसके खुद के जीवन की ही नहीं बल्कि पूरे समाज की दिशा और दशा तय करते हैं। बच्चों में ज्यादातर संस्कार उनके माँ-बाप से आते हैं और संस्कारों को विकसित करने में उनकी बहुत बड़ी भूमिका होती है। बचपन में दिए गए संस्कार व्यक्ति के साथ आजीवन रहते हैं। इसलिए बच्चों को सही संस्कार देना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे में सवाल ये बन जाते है कि समलैंगिक जोड़े यानि एक ही लिंग के वैवाहिक जोड़े क्या बच्चें पैदा करेंगे? अगर वो गोद लेंगे तो उस बच्चे की मनोदशा कैसी होगी? यही सवाल राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने रखा है।

एक अतिमहत्वपूर्ण प्रश्न यह भी था कि क्या वो बच्चा सामान्य समाज के बच्चों के साथ सामंजस्य बैठा पायेगा? और एकलिंगी जोड़ों से संस्कार मिला वो बच्चा क्या आगे चलकर समाज की दिशा और दशा तय करने के लायक होगा? चूँकि उसका पालन पोषण एकलिंगी जोड़ों के बीच हुआ तो उसका मानसिक विकास कैसा होगा?

चूँकि भारत में बच्चा गोद लेने के कानूनन नियम है कि शादीशुदा परिवार के अलावा इसके साथ ही सिंगल पैरेंट या कपल दोनों ही बच्चे को गोद ले सकते हैं। हालांकि वैवाहिक जोड़ों के लिए कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं। इनमें से कुछ नियम हैं-जैसे अगर कोई महिला किसी बच्चे को गोद लेना चाहती है तो वह लड़का या लड़की में से किसी को भी आसानी से गोद ले सकती हैं। अगर कोई पुरुष बच्चे को गोद लेना चाहता है तो उसे केवल लड़का ही गोद दिया जाता है। जबकि वैवाहिक जोड़े लड़का या लड़की में से किसी को भी गोद ले सकता है।

किन्तु एकलिंगी विवाह में पति पत्नी के जोड़े की परिभाषा क्या होगी? एक पुरुष को किस आधार पर पत्नी या फिर उस बच्चे की माता माना जायेगा? चूँकि भारतीय संस्कृति में माँ के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा रही है, माता को वात्सल्य व ममत्व से भरपूर माना जाता है। अगर कानूनी तौर पर एकलिंगी जोड़ों में से किसी एक को माता मान भी लिया गया तो क्या उसमें वात्सल्य व ममत्व होगा, वो स्नेह होगा जिसकी एक शिशु या बचपन में बच्चे को जरूरत होती है? क्योंकि भारतीय संस्कृति में परिवार की अवधारणा व्यापक है, भाव यह है कि मिल-जुलकर परस्पर स्नेह और सहयोग के साथ रहना ही परिवार का आधार है। सामान्य तौर पर माता-पिता, दादा-दादी नाना-नानी समेत बहुत सारे रिश्ते और जिम्मेदारी का नाम परिवार है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी की संरक्षक और पालक मानी जाती है।

किन्तु एकलिंगी अर्थात समलैंगिक शादियों के बाद परिवार की व्याख्या क्या होगी? रिश्तों की परिभाषा और जिम्मेदारी क्या होगी? जब ये लोग बुजुर्ग होंगे तो इनकी जिम्मेदारी समाज की होगी या सरकार की?

दूसरा सामाजिक व्यवस्था के आधार पर चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज से पृथक रहकर अपना अस्तित्व नहीं बनाए रख

पाता है। इसके लिए उसे समाज की धारा से जुड़ना पड़ता है, जो कि समाज को निश्चिंतता एवं स्थायित्व प्रदान करती है। इसी पूर्ण, स्थायी एवं निश्चित व्यवस्था को संस्कृति कहते हैं। इससे समाज के आधारभूत विचार यथा-रीति रिवाज, परम्पराएँ, नैतिकता, धर्म विश्वास, समाज को सम्मिलित किया जाता है। तो ऐसे में सवाल ये है कि ये मान्यता प्राप्त जोड़े इस समाज का किस तरह हिस्सा बन सकते है? क्या समाज की धारा से कटकर समाज से जुड़ पाएंगे अथवा किस आधार पर मान्यता मिलने पर नैतिक समाज इन्हें स्वीकार करेगा?

सबसे बड़ी बात यह भी है कि मनोविज्ञान कहता है कि ७५ प्रतिशत समलैंगिक व्यक्तियों को डिप्रेशन और उदासी का शिकार पाया गया। इन के अलावा आत्महत्या, मादक द्रव्यों के सेवन और रिश्ते की समस्याओं की आशंका भी इनमें बनी होती है। यानि यह एक बीमारी है, एक रोग है। जहाँ इसके लिए उपचार के केंद्र खड़े करने थे, वहाँ इस बीमारी को समाज का हिस्सा बनाया जा रहा है।

स्त्री पुरुष के बीच का नैतिक संबंध है विवाह, जिसे समाज द्वारा जोड़ा जाता है और उसे प्रकृति के नियमों के साथ आगे चलाया जाता है। समाज में शादी का उद्देश्य शारीरिक संबंध बनाकर मानव श्रृखंला को चलाना है। यही प्रकृति का नियम है, जो सदियों से चलता आ रहा है। लेकिन समलैंगिक शादियाँ या यौन सम्बन्ध ईश्वर द्वारा बनाये गये इस मानव श्रृंखला के नियम को बाधित करती हैं। प्राकृतिक शादियों में महिलाएं बच्चे को जन्म देती हैं। जबकि एक ही लिंग की शादियों में दंपत्ति बच्चा पैदा करने में प्रकृतिक तौर पर असमर्थ होता है।

हालाँकि समलैंगिक विवाह के पक्षधर मानते हैं कि आज उनकी संख्या बढ़ रही है तो जनभावना के आधार पर कानून बनाकर मान लिया जाये।

आर्य समाज ने इस पर अपनी दलील देते हुए लिखा था कि उदाहरण के तौर पर थोड़े समय पहले कुछ लोगों ने हरियाणा के मेवात में मिलकर एक बकरी के साथ यौन पिपासा शांत की थी। जिसे सभ्य समाज और कानून ने बर्दास्त से बाहर बताया था। यदि ऐसे लगातार १० से २० मामले सामने आये और कोई संस्था इसके पक्ष में खड़ी होकर यह माँग करे कि ये तो मनुष्य का अधिकार है? यह उसके जीने का ढंग है अत: इसे कानूनी रूप से मान्यता दी जाये, वह भी देश के नागरिक हैं तब क्या होगा? क्या आधुनिकता के नाम पर समाज और कानून इस अपराध को भी स्वीकार कर लेगा? यदि हाँ तो फिर जो धर्म, कानून और समाज जो मनुष्य को मनुष्य बनाने में सहायता करता है, उसका क्या कार्य रह जायेगा? अपवाद और अपराध हर समय और काल में होते रहे हैं पर जरुरी नहीं कि उन्हें अधिकार की श्रेणी में लाया जाये। अब इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने जो फैसला लिया है, वो कहीं ना कहीं हमारी कई दलीलों से मेल खाता है। चूँकि अब मामला केंद्र सरकार के पाले में है, तो आर्यसमाज केंद्र सरकार से भी यही निवेदन करता है कि बीमारी का उपचार जरुर हो लेकिन उसे कानून का जामा पहनाकर दूसरी बीमारी ना खड़ी की जाये। ❑❑

## ब्रह्मचर्य

ऋषि दयानन्द ब्रह्मचर्य की मर्यादा का कितना ध्यान रखते थे, उसका कुछ अनुमान इस घटना से किया जा सकता है कि एक दिन जब वे मथुरा में यमुनातट के विश्रांत घाट पर समाधिस्थ थे, उस समय एक देवी ने श्रद्धा से अपना सिर उनके पाँव पर रख दिया तब उन्होंने प्रायश्चित रूप में ३ दिन का उपवास रखा था।

# सांख्यदर्शन में शरीरों का वर्णन–३

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

पिछले दो माह हमने सांख्य में वर्णित जीवात्मा के दो शरीरों के बारे में जाना – एक भौतिक शरीर जो कि किसी प्रकार के बीज से उत्पन्न होता है और मरण को प्राप्त होता है, और दूसरा सूक्ष्म शरीर जो कि सूक्ष्म तत्त्वों का बना होता है और जीवात्मा के साथ सृष्टि के आदि से प्रलयपर्यन्त बना रहता है, जिसलिए उसे अमृत भी कहा जाता है। स्थूल शरीर को तो हम सभी भली प्रकार जानते हैं, सो वहाँ अधिक संशय नहीं होता, परन्तु सूक्ष्म शरीर बहुत रहस्यमयात्मक प्रतीत होता है। इसलिए इस विषय में वेदों और अन्य ग्रन्थों में प्राप्त कतिपय अन्य उल्लेखों को मैं इस लेख में निरूपित कर रही हूँ।

अथर्ववेद में सूक्ष्म शरीर-विषयक एक स्पष्ट उल्लेख मिलता है–

**अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।**
**जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥** ॥अथर्ववेद: ९।१०।८॥

अर्थात् (तुरगातु) शीघ्रकारी ब्रह्म (ध्रुवम्) नित्य (जीवम्) आत्मा को (पस्त्यानां मध्ये) भौतिक शरीरों के बीच में (आ शये) भली प्रकार स्थापित करता है, और (अनत्) उसको प्राणों से युक्त करता है। (मृतस्य) मरे प्राणी का (अमर्त्यः जीवो) अमरणशील आत्मा (स्वधाभिः) अपने संस्कारों के साथ (मर्त्येन) मर्त्य सूक्ष्म शरीर के साथ (सयोनिः) समान योनि वाला होता हुआ (चरति) (एक शरीर से दूसरे शरीर को) गतिमान होता है।

यह तात्पर्य प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार जी की व्याख्या पर आधारित है। यहाँ सूक्ष्म शरीर को मर्त्य कहा गया है, जबकि प्रायः उसे 'अमृत' कहा जाता है जैसा कि हमने यजुर्वेद ३४।३ मन्त्र में देखा था। यह इसलिए है कि यहाँ अमर्त्य जीवात्मा और सूक्ष्म शरीर में भेद किया जा रहा है। जहाँ जीवात्मा पूर्णतया नित्य है, सूक्ष्म शरीर केवल लम्बे काल तक बने रहने के कारण (पूर्ण सृष्टिकाल पर्यन्त), शरीर की सापेक्षता से नित्य है। वास्तव में, सूक्ष्म प्राकृतिक तत्त्वों से बने होने के कारण, है तो वह भी मर्त्य ही! सृष्टि के प्रारम्भ में वह उत्पन्न होकर जीवात्मा से जुड़ जाता है और मोक्ष अथवा प्रलय होने पर नष्ट होकर मूलप्रकृति में परिणमित हो जाता है।

'सयोनि' से यहाँ आत्मा व सूक्ष्म शरीर के साथ को बताया गया है–मरणोपरान्त जीवात्मा एकाकी नहीं विचरता, अपितु सूक्ष्म शरीर से लिपटा रहता है। यही बात सांख्यदर्शन में भी कही गई थी।

संस्कारयुक्त चित्त का जन्म-जन्मान्तर में आत्मा के साथ बने रहना जब हम समझ जाते हैं, तो शास्त्रों के अन्य वचन स्वतः समझ में आने लगते हैं। यथा योगदर्शन कहता है –

**जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥**

योगदर्शनम् ४।९ ॥ अनुवृत्तिः–वासनानाम् ॥

अर्थात् जाति (प्राणी की योनि), देश और काल से व्यवहित वासनाओं की भी निरन्तरता होती है, स्मृति और संस्कारों की एकरूपता के कारण।

इससे पतञ्जलि जनाते हैं कि जन्मजन्मान्तर में अर्जित वासनाएं संस्कार रूप में हमारे चित्त में

बसती हैं, और वे संस्कार स्मृतिरूप ही होता है । संस्कार जैसा कोई भेद चित्त का नहीं बताया गया है । उसका कारण इस कथन से स्पष्ट हो जाता है – चित्त के स्मृति अंश में ही संस्कार स्थित होता है । परन्तु यह संस्काररूपी स्मृति का अन्य स्मृतियों से यह भेद होता है कि यह योनि, देश और काल से व्यवहित नहीं होती – जन्मजन्मान्तर में बनी रहती है । अन्य स्मृतियाँ, जैसे हमने किन घरों में निवास किया, किस खिलौने से बचपन में खेले, आदि, चाहे हमें जीवनभर इस जन्म में याद रहें, परन्तु अगले जन्म में ये सब लुप्त हो जाती हैं । संस्कारों के कारण ही विभिन्न व्यक्तियों में भेद होता है । इस सूत्र से यह निष्कर्ष निकला कि संस्कारों को संग्रहीत करने वाला चित्त भी जन्मजन्मान्तर में बिना नष्ट हुए बना रहता है, अर्थात् सूक्ष्म शरीर बना रहता है ।

इसी तथ्य का संकेत हमें मनुस्मृति में भी प्राप्त होता है –

**देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं तु देहिनः ।**
**तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥** ॥ मनुस्मृतिः १२।४०॥

अर्थात् सात्विक आत्माएं अगले जन्म अथवा मोक्ष में देव बनते हैं, सामान्य देही, जो प्रधानरूप से राजसिक प्रवृत्ति वाले होते हैं, मनुष्य बनते हैं; और तामसिक वृत्ति वाले लोग पशु योनियों में जन्म लेते हैं। यहाँ यह देखना आवश्यक है कि यहाँ योनि केवल कर्मफल के अनुरूप नहीं मिल रही है, अपितु जिस चित्तवृत्ति की हमने इस जन्म में वृद्धि की, उसके अनुसार भी जन्म मिलता है। जैसे–सात्विक वृत्ति ज्ञानप्रेमियों की होती है। अब ज्ञानार्जन तो कर्म होता ही नहीं, तो उसका फल कैसा? सो, चित्त की जो प्रवृत्ति अधिक थी, अगले जन्म में उसी प्रवृत्ति के अनुरूप स्थान मिल जाता है। इससे चित्त में सुरक्षित सात्विक आदि संस्कारों की अमरता का हमें ज्ञान होता है, जिससे पुनः चित्त का अमृतत्व सिद्ध हो जाता है। या इसके विपरीत जानें तो, बिना चित्त के अमृतत्व के, उपर्युक्त त्रिविध गति सम्भव ही नहीं है।

कठोपनिषद् में भी हमें इसके समान एक वाक्य मिलता है –

**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥** ॥ कठोपनिषत् ५।७॥

अर्थात् देही = प्राणी अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं । यहाँ ज्ञान उपर्युक्त सात्विक, राजसिक और तामसिक वृत्तियों को ही कह रहा है–जो आत्माएं अधिक ज्ञानार्जन करती हैं, वे सात्विक योनियाँ, जो कर्म में दक्षता प्राप्त करती हैं, वे मनुष्य आदि योनियाँ, और जो, जड़ता, अकर्मण्यता और क्रूरता आदि निकृष्ट प्रवृत्तियों का आलम्बन लेती हैं, वे पशु–पक्षी व स्थावर (स्थाणु) योनियों को प्राप्त करती हैं । जिस काम में भी हम इस जन्म में प्रयत्न द्वारा निपुण हो जाते हैं, चाहे वह ज्ञान हो, चाहे सांसारिक कर्म हों, जैसे राजनीति, संगीत, नृत्य, और चाहे वह क्रूरता आदि तामसिक व्यवहार हो, यह ज्ञान, ये संस्कार, हमारे अगले जन्म में भी दृष्टिगोचर होते हैं । ब्रजभाषा में मुहावरा है – पूत के लच्छन पालने में दिख्खें – इसी बात को द्योतित कर रहा है कि नवजात शिशु में ही ये संस्कार प्रतीत होने लगते हैं । यदि सूक्ष्म शरीर पिछले शरीर के साथ ही मर जाता, तो ये संस्कार कहाँ से पुनः उत्पन्न होते?

इस प्रकार सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व व उसके अमरत्व का संकेत हमें अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है, चाहे यह तथ्य हमें अर्थापत्ति से ही सिद्ध क्यों न करना पड़े ! वेद भी इस बात को स्पष्ट रूप से कहते हैं। वस्तुतः, यह ज्ञान वेदों से ही निष्पन्न हुआ है । ❑❑

# रक्त सम्बन्धी विवाह पर मुस्लिम देशों में बवाल

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

ये साल २०१६ था और महीना था जुलाई का जगह थी चीन, अफगानिस्तान, किर्गिस्तान और उज्बेकिस्तान के बीचों-बीच बसा मध्य एशिया का सबसे गरीब मुस्लिम देश है ताजिकिस्तान। ऐसा दुर्लभ ही होता है कि इस देश की कोई घटना सारी दुनिया में चर्चा का विषय बन जाए। लेकिन उस दौरान यहाँ की संसद का एक फैसला अंतरराष्ट्रीय सुर्खियों में शामिल हुआ। यह फैसला था देश में कॉन्सेंग्युनियस विवाह यानि (रक्त सम्बन्धी विवाह) पर प्रतिबन्ध लगाना। जो कि मुस्लिम देशों में या मुस्लिम समाज में एक आम बात है ममेरी फुफेरी चचेरे बहन भाइयों का निकाह होना या उससे भी निकट रक्तसम्बन्धी से निकाह करना। इसीलिए जब मुस्लिम बहुल ताजिकिस्तान ने इस प्रथा पर रोक लगाने का प्रगतिशील फैसला लिया तो इसने दुनिया भर के कई लोगों को हैरत में डाल दिया।

इससे अनेकों मुस्लिम देशों के मुल्ला मौलाना नाराज हो चले लेकिन चिकित्सा विज्ञान को समझने वाले जानकार सामने आये बोले और कॉन्सेंग्युनियस निकाह को मजहबी नजरिए से नहीं बल्कि आधुनिक नजरिए से देखा परखा जाना चाहिए।

अब इस पर दुनिया के अन्य देशों को छोड़ दिया जाये तो सबसे अधिक हलचल मची पाकिस्तान के अन्दर क्योंकि पाकिस्तान के अन्दर तो ७५ फीसदी पाकिस्तानी अपने घर परिवार में ही निकाह करते है। यानि भाई ही अपनी बहनों के पति है और पाकिस्तान में इस तरह भाई बहनों के बीच निकाह होना कोई बड़ी बात नहीं है। ये बहने चाचा, मामा आदि की बेटियाँ होती हैं।

दरअसल ताजिकिस्तान ने यह फैसला लेते हुए माना है कि रक्त सम्बन्धी विवाह से पैदा होने वाले बच्चों में आनुवांशिक रोग होने की संभावनाएं ज्यादा होती हैं। यहाँ के स्वास्थ्य विभाग ने २५ हजार से ज्यादा बीमार कमजोर रोगी बच्चों की बीमारी का अध्ययन करने के बाद बताया कि इनमें से लगभग ३५ प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं जो रक्त सम्बन्धी विवाह से पैदा हुए हैं। यानि ताजिकिस्तान में डॉक्टर्स ने साफ कर दिया कि रक्तसम्बन्धी विवाह से पैदा होने वाले बच्चों में आनुवांशिक रोग होते रहते हैं लेकिन यह चर्चा कभी भी इतने व्यापक स्तर पर नहीं हुई कि इस तरह के निकाह पर प्रतिबन्ध लग सके।

हालाँकि कई देश ऐसे भी हैं जहाँ रक्त सम्बन्धी विवाह पर पूरी तरह प्रतिबन्ध तो नहीं है लेकिन, यह आंशिक रूप से प्रतिबन्धित है। उदाहरण के लिए कई अमरीकी राज्यों में रक्त सम्बन्धी विवाह की अनुमति सिर्फ उन्हीं लोगों को दी जाती है जिनकी उम्र ६५ वर्ष से अधिक हो या जो बच्चे पैदा करने में असमर्थ हो। इसी तरह कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ सिर्फ चिकित्सकीय जांच के बाद ही रक्त सम्बन्धी विवाह की अनुमति दी जाती है। जानकारों का मानना है कि इन सभी देशों में इस तरह के प्रतिबन्ध सिर्फ इसीलिए लगाए गए हैं ताकि बच्चों में होने वाले आनुवांशिक रोगों को रोका जा सके।

अब भले ही पाकिस्तानी मुफ्ती इसे इस्लाम का अभिन्न हिस्सा बता रहा हो। लेकिन आंकड़े तो कुछ और ही कह रहे है। दरअसल ब्रिटेन में

पैदा होने वाले बच्चों में पाकिस्तानी मूल के कुल तीन प्रतिशत बच्चे होते हैं। लेकिन आनुवांशिक रोग के पीड़ित ब्रिटेन के कुल बच्चों में से १३ प्रतिशत पाकिस्तानी मूल के ही हैं।

दा गार्जियन की एक रिपोर्ट बताती है कि ब्रेडफोर्ड कुल आबादी में लगभग १७ प्रतिशत आबादी पाकिस्तानी मुस्लिम लोगों की है। इन लोगों में से ७५ प्रतिशत लोग अपने ही समुदाय में चचेरे/ममेरे भाई/बहनों से शादियाँ करते हैं। अध्ययन में सामने आया था कि यहाँ रहने वाले बच्चों में से कई आनुवांशिक रोगों का शिकार हैं और इसका मुख्य कारण रक्त सम्बन्धी विवाह ही है।

ऐसा नहीं है कि यह शोध केवल ब्रिटेन के ब्रेडफोर्ड में ही हुआ। आंध्र प्रदेश की रहने वाली बिंदु शॉ ने भी इस विषय पर दिल्ली विश्वविद्यालय से शोध किया, हालाँकि हमारे ऋषि मुनियों को छोड़ दें तो भारत में अब तक ऐसे शोध न के बराबर ही हुए हैं, जिनमें रक्त सम्बन्धी विवाह और उनके कारण होने वाले आनुवांशिक रोगों को साथ में परखा गया हो। तो रक्त सम्बन्धी विवाह पर शोध करने वाली बिंदु शायद पहली भारतीय ही हैं। बिंदु ने दो सौ ऐसे परिवारों पर अध्ययन किया तो अध्ययन में सामने आया कि जिन्होंने रक्त सम्बन्धी विवाह किया था इनमें से ९७ परिवारों के बच्चे आनुवांशिक रोग से पीड़ित पाए गये।

बिंदु ने अपने शोध में बताया कि 'जब भी कोई व्यक्ति अपने रक्त-सम्बन्धियों से शादी करता है तो उनके कई जीन एक समान होते हैं। इस स्थिति में यदि उनके जीन में कोई विकार होता है तो उनके होने वाले बच्चे में ऐसे विकृत जीन की दो प्रतियाँ पहुँच जाती हैं। यही रोग का कारण बनता है। जबकि समुदाय से बाहर शादी होने पर जीन का दायरा बढ़ जाता है और इसलिए किसी विकृत जीन के बच्चों तक पहुँचने की संभावनाएं काफी कम हो जाती हैं।'

उस दौरान ताजिकिस्तान ने फैसला लेते हुए कुरआन का फरमान ठुकराया तो इस फैसले का विरोध करने वाले मुल्ला खड़े हो गये। उनकी माँग थी कि या तो यह फैसला वापिस लिया जाये या फिर इस तथ्य की पुष्टि के लिए अधिक से अधिक आंकड़े प्रस्तुत किये जाएं। जब ताजीकिस्तान में यह विवाद जोरो पर था उसी दौरान बी.बी.सी. पर एक पाकिस्तानी लड़की की डेकूमेनटरी आई थी, नाम था 'शुड आई मेरी माय कजिन' क्या मुझे अपने कजन से शादी करनी चाहिए?

इस में एक ऐसी ब्रिटिश पाकिस्तानी लड़की की कहानी है जो अपनी शादी को लेकर ऊहापोह में है। वह इस सवाल से जूझती है कि क्या कजन से शादी करनी चाहिए? वो कहती है मैं हिबा हूँ। १८ साल की ब्रितानी पाकिस्तानी लड़की। किसी भी युवा लड़की की तरह मैंने भी शादी के बारे में सोचना शुरू कर दिया है। लेकिन मेरे आसपास रहने वाले ब्रितानी-पाकिस्तानी ७० फीसदी युवा अपने चचेरे भाई-बहनों में शादी करते हैं। इनमें मेरे दादा-दादी भी शामिल हैं लेकिन क्या अगर मैं ऐसा करने से इनकार कर दूं तो क्या ये मेरा पागलपन होगा या मुझे इस परंपरा से छुटकारा पा लेना चाहिए?

दरअसल हिबा की यह कहानी उन पाकिस्तानी सेलेब्रिटीज को आइना दिखा रही थी, जिसमें पाकिस्तानी एक्टर बाबर खान ने २०१५ में अपनी कजिन बिस्मा खान से शादी की, जो ९वीं क्लास में पढ़ रही थी। गायक नुसरत फतेह अली खां ने अपनी चचेरी बहन नाहिद से शादी की थी। पाक क्रिकेटर सईद अनवर ने कजिन सिस्टर लुबना से शादी की है। क्रिकेटर शाहिद आफरीदी ने भी चचेरी बहन से शादी की है। और ना जाने कितने नाम हैं क्योंकि उसी दौरान खबर भी खूब चली थी कि ७५ प्रतिशत पाकिस्तानी अपने घर परिवार में

ही शादी करते हैं। लेकिन इसके बाद पाकिस्तान से ये भी खबर आई थी कि भाई बहनों से शादी के कारण पाकिस्तान में जो नये बच्चे पैदा हो रहे हैं वो अजीब बिमारियों का शिकार हैं।

पाकिस्तान की अधिकांश आबादी इस तथ्य से अवगत नहीं है जबकि कई अध्ययनों से जमा किए गए आंकड़ों का प्रतिपादन करते हुए, यह देखा गया है कि चचेरे भाई-बहनों के विवाह से उत्पन्न संतानों में से ११ प्रतिशत ऑटोसोमल रिसेसिव विकार प्रदर्शित किए, करीब १२ प्रतिशत ने गैर-विशिष्ट गंभीर बौद्धिक हानि दिखाई, १६ प्रति प्रतिशत ने जन्मजात विकृतियाँ प्रदर्शित कीं और १४.६ प्रतिशत ने हल्की बौद्धिक हानि प्रदर्शित की।

इसके बाद जर्मनी के समाचार डी. डब्ल्यू. न्यूज ने भी पाकिस्तान के उन लोगों पर एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की, जो निकाह की इस परंपरा से बंधे हुए हैं। इस इंटरव्यू में लोगों ने अपने निजी अनुभव बांटे हैं और बताया कि उनके परिवारों में ना जाने कहाँ से अजीब-अजीब बीमारियाँ घर कर रही हैं, जिसमें हेपेटाइटिस और तपेदिक तो आम बात है।

जब यह खबर बनी तो यूरोप के कई देशों में रक्त सम्बन्धी आपसी विवाह पर रोक लगा दी थी। आज भले ही पाकिस्तानी मौलाना खूब तर्क दे रहे हों, वो इसके फायदे बता रहे हों, लेकिन यह सब शोध लाखों करोड़ो साल पहले हो चुके हैं। वेदों में हमारे ऋषि मुनि सृष्टि के आदि में ही लिख गये थे। ऋग्वेद में कहा है- **'संलक्षमा यदा विषु रूपा भवाती'** अर्थात सहोदर बहिन से पीड़ाप्रदय संतान उत्पन्न होने को सम्भावना होती है।

दूसरा एक ही परिवार, गोत्र में विवाह भारतीय हिन्दू संस्कृति में हमेशा एक विवाद का विषय रहा है। अंग्रेजी और उर्दू अरबी दिमाग से सनी मीडिया इसे प्रेम पर पहरा व खाप के फरमान के तौर पर पेश करता है। जिस कारण आज नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच टकराव का कारण बना है। जबकि सामाजिक और वैदिक द्रष्टि से सगोत्र व रक्त सम्बन्धी विवाह अनुचित है। हरियाणा, पंजाब पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अनेकों जगह आज भी केवल माता पिता ही नहीं अगर दादी भी एक गोत्र की है तो भी विवाह नहीं होते।

यानि रक्त सम्बन्धी विवाह मतलब खून का सम्बन्ध जितना दूर का होगा संतान उतनी ही वीर, पराक्रमी और निरोगी होगी। दूसरे शब्दों में कहें तो पैदा होने वाले बच्चे उतने ही स्वस्थ व बुद्धिमान होंगे। चाइना इस बात को बहुत देर से समझा और १९८१ में स्पेशल मैरिज एक्ट लाकर कजिन मैरिज पर प्रतिबन्ध लगाया। इस एक्ट के आर्टिकल-७ के अनुसार कोई चीनी शख्स अपने किसी थर्ड कजिन तक से शादी नहीं कर सकता है। आखिर इसके पीछे चीन ने भी तो तर्क गढ़े होंगे। ब्लड रिलेशंस मेरिज क्यों रोक दी।

दरअसल ब्लड रिलेशंस और कजिन रिलेशंस यानि रक्त-संबंध दो तरह के होते हैं। पहला मैटर्नल यानि माँ के पक्ष से और दूसरा पैटर्नल यानि पिता के पक्ष से। जब हम हिन्दी और उर्दू में बात करते हैं तो चचेरा, ममेरा, फुफेरा और मौसेरा भाई-बहन बोलते हैं, लेकिन अंग्रेजी में इन सारे संबोधन के लिए एक ही शब्द है-कजिन। इस लिहाज से कजिन मैरिज का मतलब ऐसे लोगों के बीच विवाह जो माँ या पिता के पक्ष से भाई-बहन लगते हों। ❑❑

**सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।** -महर्षि दयानन्द

# अत्यंत रोचक ज्ञानवर्धक चर्चा

## साभार : महर्षि दयानन्दकृत सत्यार्थ प्रकाश

**[ गतांक से आगे ]**

'वे सब लोग बोले–जो हम ऐसा करेंगे तो हम को कौन पूछेगा? हमारे चेले हमारी आज्ञा में नहीं रहेंगे। हमारी जीविका नष्ट हो जाएगी। फिर जो हम इतना आनंद कर रहे हैं, वह सब हाथ से निकाल जाएगा। इसलिए हम जानते हैं तो भी अपने-अपने मत मजहब सम्प्रदाय का उपदेश और अपने ही मत में शामिल होने का आग्रह करते ही जाते हैं क्योंकि "रोटी खाइए शक्कर से–और दुनिया ठगिए मक्कर से" ऐसी बात है। देखो संसार में सीधे सच्चे मनुष्यों को कोई एक पैसा नहीं देता और न ही कोई पूछता है। जो जितनी अधिक ढोंगबाजी और धूर्तता करता है, वह उतना ही अधिक पदार्थ पाता है।

(जिज्ञासु): जो तुम लोग ऐसा पाखंड मत चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो तो फिर तुमको राजा दंड क्यों नहीं देता?

(सम्प्रदाय वाले): हम ने राजा को भी अपना चेला बना लिया है । हम ने पक्का प्रबंध किया है–छूटेगा नहीं।

(जिज्ञासु): जब तुम छल से अन्य मनुष्यों को ठग के उन की इतनी हानि करते हो, तो परमेश्वर को क्या उत्तर दोगे? और घोर नरक में पड़ोगे। थोड़े से जीवन के लिए इतना बड़ा अपराध क्यों नहीं छोड़ते?

(सम्प्रदाय वाले): जब जैसा होगा तब देखा जाएगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा, तब होगा अभी तो आनन्द करते हैं। हम को सभी लोग प्रसन्नता से धन आदि पदार्थ देते हैं । कुछ जबरदस्ती नहीं लेते हैं । फिर राजा हमें बिना अपराध क्यों दण्ड देवे?

(जिज्ञासु): जैसे कोई व्यक्ति छोटे बालक को बहला-फुसलाकर के धन आदि पदार्थ छीन लेता है, जैसे उसको दंड मिलता है–वैसे तुम को क्यों नहीं मिलता? क्योंकि–

**अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः॥**

भावार्थ : जो ज्ञान रहित होता है वह बालक कहाता है और जो ज्ञान का देने वाला है, वह पिता कहलाता है । जो व्यक्ति बुद्धिमान व विद्वान है, वह तो तुम्हारी पाखंड मत और बातों में नहीं फंसता है । किन्तु जो मनुष्य भोले भाले और अज्ञानी हैं और बालकों के जैसे है – उनको ठगने के जुर्म में तुम जैसे लोगो को राज दंड अवश्य होना चाहिए।

(सम्प्रदाय वाले): जब राजा–प्रजा सभी लोग हमारे पाखंड मत में हैं तो हम को दंड कौन देने वाला है ? जब राजा ऐसी कोई व्यवस्था करेगा, तब इन पाखंडों को छोड़ कर कुछ जीविकोपार्जन की दूसरी व्यवस्था करेंगे।

(जिज्ञासु): जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो – इससे अच्छा तो यह होगा कि तुम कुछ विद्या का अभ्यास कर गृहस्थों के लड़के-लड़कियों को पढ़ाया करो तो तुम्हारा भी कल्याण होगा और गृहस्थों का भी कल्याण हो जायेगा।

(जिज्ञासु): जब हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ के–बाल्यावस्था से युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़ने में रहे–पश्चात पढ़ने-पढ़ाने में और उपदेश करने-कराने में जन्म भर परिश्रम करे–इतना सब कुछ करने का हमें क्या प्रयोजन है?

हम को तो ऐसे ही बैठे बिठाए लाखों करोड़ों रुपए मिल जाते है। मजे से चैन करते हैं ! उस

सुख को क्यों छोड़े?

(जिज्ञासु): इसका परिणाम तो बुरा है। देखो, तुम को बड़े बड़े रोग होते हैं। शीघ्र मर जाते हो। बुद्धिमान लोगों के बीच निन्दित होते हो। फिर भी क्यों नहीं समझते?

(सम्प्रदाय वाले): अरे भाई !

**टका धर्माष्तका कर्म टका हि परमम पदम।**
**यश्य गृहे टका नास्ती हा!! टका म टकायते॥**
**आना अंसकला: प्रोक्ता: रूपयो असो भगवान स्वयं।**
**अतस्तम सर्व इच्चनती रुपया ही गुणवन्तम्॥**

तू लड़का है। संसार की बातें नहीं जानता? देख ! टका के बिना धर्म, टका के बिना कर्म, टका के बिना परम पद नहीं होता। जिस के घर में टका नहीं है वह हाय ! टका-टका करता करता उत्तम पदार्थों को टक टक देखता रहता है कि हाय! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थों को मैं भोगता। इसलिए सब कोई रूपयों की खोज में लगे रहते हैं, क्योंकि सब काम रूपयों से सिद्ध होते हैं।

(जिज्ञासु): ठीक है। तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आ गई। तुम ने जितना यह पाखंड मत मजहब खड़ा किया है, वह सब अपने सुख के लिए किया है परन्तु तुम्हारे असत्य बोलने से जगत का नाश होता है क्योंकि जैसा सत्य उपदेश से संसार के लोगों को लाभ पहुँचता है—वैसी ही असत्य के उपदेश से बहुत हानि होती हैं। जब तुमको धन का ही प्रयोजन था तो वह तो आप लोग नौकरी और व्यापार आदि कर्म करके भी धन इकट्ठा कर सकते थे; सो क्यों नहीं कर लेते हो ?

(सम्प्रदाय वाले): उस में परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती हैं। परन्तु इस हमारी पाखंड मत को फैलाने में हानि कभी नहीं होती किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है।

(जिज्ञासु): ये लोग तुमको बहुत सा धन किस लिए देते हैं?

(सम्प्रदाय वाले): धर्म, स्वर्ग और मुक्ति के लिए देते हैं।

(जिज्ञासु): जब तुम ही मुक्त नहीं और न ही मुक्ति का स्वरूप व साधन जानते हो, तो तुम्हारी सेवा करने वालों को क्या मिलेगा?

(सम्प्रदाय वाले): क्या इस लोक में मिलता है? नहीं, किन्तु मरकर पश्चात परलोक में मिलता है। जितना ये लोग हम को धन आदि देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगो को परलोक में मिल जाता है।

(जिज्ञासु): इन भोले भाले अज्ञानी लोगों को तो दिया हुआ धन मिल जाता है वा नहीं। तुम लेने वालों को क्या मिलेगा? नरक वा अन्य कुछ?

(सम्प्रदाय वाले): हम भजन करते और कराते हैं। इसका सुख हमको ही तो मिलेगा।

(जिज्ञासु): तुम्हारा लोगों को भजन सुनना और सुनाना भी तो टके के लिए ही है। वे सब टके यहीं पड़े रह जायेंगे और जिस माँस पिंड के मनुष्य शरीर को पालते हो, वह मानव शरीर भी भस्म होकर यहीं रह जाएगा। जो तुम परमेश्वर का भजन कीर्तन कर रहे होते, तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होते।

(सम्प्रदाय वाले) : क्या हम अशुद्ध हैं?

(जिज्ञासु): भीतर के बड़े मैले हो

(सम्प्रदाय वाले): तुमने कैसे जाना?

(जिज्ञासु): तुम्हारे चाल-चलन-व्यवहार से।

(सम्प्रदाय वाले): महात्माओं का व्यवहार हाथी के दांत के समान होता है। जैसे हाथी के दांत खाने के अलग और दिखाने के अलग होते हैं। वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं।

(जिज्ञासु): जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी सुद्ध होते। इसलिए

तुम भीतर भी मैले ही हो ।

(सम्प्रदाय वाले): हम चाहे जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।

(जिज्ञासु): जैसे तुम गुरु हो – वैसे ही तुम्हारे चेले भी होंगे।

(सम्प्रदाय वाले): सब मनुष्य एक मत कभी नहीं हो सकते क्योंकि मनुष्यों के गुणकर्म से स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

(जिज्ञासु): जो बाल्यावस्था में एक सी शिक्षा हो, सत्य भाषण आदि धर्म का ग्रहण और सेवन हो और मिथ्या भाषण आदि अधर्म का सब मनुष्य परस्पर प्रेम पूर्वक त्याग करे तो एकमत और एक वैदिक धर्मी अवश्य हो जाए। और दो मत अर्थात धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं तो रहे। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने से और अधर्मी के कम होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक बढ़ता है तो सब लोगों को दुख होता है। जब सब मनुष्य एक सा सत्य उपदेश करें और मिथ्या मत की हानि करे तो लोगों को एक धर्म व मत में लाने में बिलम्ब न हो।

(सम्प्रदाय वाले): आजकल कलियुग है। सतयुग की बात मत चाहो।

(जिज्ञासु): कलियुग नाम काल का है। काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्म के करने में साधक बाधक नहीं हैं, किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्तियाँ बन रहे हो। ये सब संग के गुण दोष हैं– स्वाभाविक नहीं। इतना कह कर वह जिज्ञासु श्रेष्ठ आप्त विद्वान के पास गया। उन से कहा कि महाराज ! तुम ने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसी धूर्त पापी पाखंडी विधर्मी के जाल में फंस कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता। अब से मैं भी इन विधर्मी पाखडियों और मजहबी लोगों का खण्डन और सत्य सनातन वैदिक धर्म का मंडन किया करूंगा।

(श्रेष्ठ विद्वान): यही सब मनुष्यों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य सनातन वैदिक धर्म और संस्कृति का मंडन अवश्य करना चाहिए और असत्य खंडन पढ़ा सुना के सत्योपदेश से लोगों को उपकार पहुँचाना चाहिए । ❑❑

साभार-महर्षि दयानंद कृत सत्यार्थ प्रकाश।

# मृत्यु का अद्‌भुत दृश्य

स्वामी जी का अन्त समय आया और अजमेर में अनेक सज्जन उनके अन्तिम दर्शन करने पहुँचे। उनमें लाहौर के प्रसिद्ध विद्वान् पं गुरुदत्त विद्यार्थी एम०ए० भी थे। गुरुदत्त को ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं था, परन्तु परन्तु स्वामी जी के लिए बड़ी श्रद्धा थी। स्वामी जी ने सबसे बातचीत करके रुखसत कर दिया। अब वे जिस शय्या पर थे। उस पर बैठ गए। उन्होंने कुछ प्राणायाम किया। प्राणायाम के बाद कुछ वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण किया। मन्त्रोच्चारण करते-करते उनके मुख पर मुस्कुराहट आई। गुरुदत्त सोचने लगे कि मौत का नाम सुनकर लोग कांप जाया करते हैं। परन्तु इस मृत्यु का स्वामी दयानन्द पर प्रभाव नहीं, वे दुःखी होने की जगह मुस्कुरा रहे हैं। स्वामी दयानन्द की यह मुस्कुराहट एक विद्युत थी, जिसने गुरुदत्त के हृदय में जाकर वहाँ नास्तिकता का जो कूड़ा करकट जमा था उसे भस्म करके गुरुदत्त को उच्चकोटि का आस्तिक बना दिया। स्वामी दयानन्द मुस्कुराते हुए बोले, 'प्रभो आपने अच्छी लीला की, आपकी इच्छापूर्ण हो।' इन शब्दों के सथ ही उन्होंने अन्तिम श्वांस खींचा और दुनिया से रुखसत हो गए। मृत्यु के इस अद्‌भुत दृश्य ने प्रकट कर दिया कि जो महान् पुरुष ईश्वर विश्वासी होते हैं, जिनके हृदय में परोपकार के भाव भरे होते हैं और जिनका संसार में किसी से ईर्ष्या, द्वेष नहीं होता, वे इस प्रकार प्रसन्न वदन, मुस्कुराते और ईश्वर को स्मरण करते हुए ही संसार से कूच किया करते हैं। ❑❑

॥ ओ३म् ॥

# भारत में कम्युनिस्ट–घुसपैठ

–राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! भारत की स्वतंत्रता का आन्दोलन (संग्राम) धार्मिकता और धार्मिक लोगों से आरम्भ हुआ। वैसे भी तब तक भारत में धर्मनिरपेक्षता के विषाणु पैदा नहीं हुए थे। समाज सुधार के आन्दोलन भी (मुख्यत: आर्य समाज) धार्मिक नेताओं से आरंभ हुए, जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में स्वतंत्रता आन्दोलन को गति प्रदान की। १८५७ के संग्राम में धार्मिकता (चर्बी वाले कारतूस, ईसाइयत से प्रभावित समाज सुधारकों द्वारा सती प्रथा, विधवा विवाह आदि के विरोध व समर्थन में बनवाए कानून) थी ही। इसके बाद गुरु रामसिंह, वासुदेव बलवंत फड़के, चाफेकर बन्धु, श्याम जी कृष्ण वर्मा, तिलक, सावरकर बन्धु, मदन लाल ढींगरा, योगी अरविन्द, सरदार अजीत सिंह, लाला हरदयाल, राजा महेन्द्र प्रताप, रास बिहारी बोस, भाई परमानन्द, शचीन्द्रनाथ सान्याल, रामप्रसाद बिस्मिल, नेता जी सुभाष, गाँधी जी आदि सभी व्यक्ति धार्मिक थे और हर प्रकार से भारत के अतीत से जुड़े हुए थे।

लाला हरदयाल व रास बिहारी बोस जैसे महान क्रांतिकारियों के नेतृत्व में १ फरवरी १९१५ को होने वाली महान क्रान्ति एक नीच गद्दार (कृपाल सिंह) के कारण विफल हो गई, तो बाद में उससे जुड़े कई नेता रूस की क्रान्ति (नवम्बर १९१७) की सफलता से प्रभावित होकर ताशकन्द पहुँचे। उनमें से कई तो क्रांति नेता लेनिन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने प्रयास से समाजवाद का प्रशिक्षण लेने के लिए लगभग ७५ गदरी कार्यकर्ताओं को कम्युनिस्ट विश्वविद्यालय मास्को में भेजा और भारत में आकर अमृतसर से फरवरी १९२६ में 'किरती' (पंजाबी) मासिक पत्रिका निकालनी शुरू की। १९२७-२८ में भगतसिंह ने छद्म नाम से इस पत्रिका में कई लेख लिखे। पत्रिका के सम्पादक भाई संतोख सिंह के निकट के साथी व देश-विदेश में कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रचारक भाई रतन सिंह की इटली प्रवास के दौरान नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से हुई भेंट का वर्णन करते हुए कम्युनिस्ट लेखक श्री चमनलाल ने अमर शहीद करतार सिंह सराभा की जीवनी में लिखा है–(भगतसिंह के चाचा) अजीतसिंह और सुभाषचन्द्र बोस भाई रतनसिंह की निकटता के बावजूद उनमें वैचारिक मतभेद बने रहे। अजीतसिंह व नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भाई रतनसिंह के कम्युनिस्ट विचारों से सहमत नहीं हो सके थे। ...(१९४७ में) गदर पार्टी के अधिकांश कार्यकर्ता समर्पित कम्युनिस्ट कार्यकर्ता बन गए, लेकिन बाबा पृथ्वीसिंह आजाद व अन्य कई कार्यकर्ता कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल नहीं हुए।"

अस्थायी भारतीय सरकार के प्रधानमंत्री प्रोफेसर बरकतुल्ला भी ताशकन्द पहुँचे (१९१९)। समाजवाद के सिद्धान्तों ने उन्हें आकर्पित तो किया, पर वे मार्क्सवाद से प्रभावित नहीं हुए।

१७ अक्तूबर १९२० को मानवेन्द्र नाथ राय तथा अवनीन्द्र नाथ मुखर्जी ने ताशकंद में हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की थी। १९२१ के प्रारम्भ में भारतीय क्रांतिकारियों का एक दल वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाधयाय तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त आदि के नेतृत्व में मास्को भी गया था। यहाँ पर इन्होंने एक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना का प्रयास किया था। भारत के कुछ अखबारों जैसे सिन्ध में हिन्दू कानपुर के 'प्रताप' तथा 'प्रभु' ने बोल्सेविज्म

का प्रचार भी भारत में प्रारम्भ कर दिया था। श्रीपद अमृत डांगे ने मई १९२२ से सोशलिस्ट नामक पत्र भी निकालना प्रारम्भ किया था। १९२५ तक लाहौर, कलकत्ता, कानपुर और कराची में मार्क्सवादी दल सक्रिय हो चुके थे। सितम्बर १९२४ में कानपुर के एक पत्रकार सत्य बख्त ने 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना कर दी थी। इस दल ने यह घोषणा की थी कि इसका कोई भी सम्बन्ध कॉमिनतर्न तथा विदेशों में सक्रिय क्रांतिकारी दलों से नहीं है। इस दल का पहला सम्मेलन दिसंबर १९२५ में कानपुर में हुआ, जिसकी अध्यक्षता चेटियार ने की। पार्टी के दूसरे(कलकत्ता) अधिवेशन तक इसमें कॉमिन्तन के प्रश्न पर मतभेद उत्पन्न हो गया। सत्यबख्त ने त्यागपत्र देकर राष्ट्रींय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

१९२४ ई० में एम० एन० राय ने कम्युनिस्ट पार्टी के विदेश विभाग का कार्यभार संभाला। कुछ समय बाद इनका रूस की साम्यवादी पार्टी से मतभेद हो गया। जर्मनी के साम्यवादियों से भी उनका मेल नहीं खाया। लेनिन के परम मित्र एम. एन. राय जब दिसम्बर १९३० में भारत लौटे, तो उनका कम्युनिस्ट विचारधारा से मोह भंग हो चुका था। बाद में वे मानवतावादी बन गए।

महान क्रांतिकारी कामरेड शचीन्द्रनाथ सान्याल ने 'बन्दी जीवन' पुस्तक में लिखा है–(पहली बार) काले पानी से लौटने के बाद संभवत: १९२३ में ही मैं पहले-पहल कम्यूनिस्ट सिद्धान्तों से परिचित हुआ। यह एक नवीन सिद्धान्त था जिसके साथ क्रान्तिकारी दल के किसी व्यक्ति का भी उस समय यथार्थ परिचय न था। तत्पश्चात् सन १९२५ में जेल जाने के पहले मैं कम्यूनिस्ट सिद्धान्त के साथ यथेष्ट रूप से परिचित हुआ था। बहुत से प्रामाणिक ग्रन्थ पढ़े, कम्यूनिस्टों के साथ खूब वाद-विवाद किया, विचार विनिमय किया।..... कम्यूनिस्ट सिद्धान्त का कुछ अंश तो मैंने ग्रहण कर लिया, लेकिन कुछ अंश को मैं आज (१९३८ ई०) भी ग्रहण नहीं कर पाया। कम्यूनिज्म के सिद्धान्त की आर्थिक-योजना की बहुत सी बातें मैंने स्वीकार कीं, लेकिन आर्थिक योजना के साथ कम्यूनिज्म के सिद्धान्त में भौतिकवाद के बहुत से ऐसे सिद्धान्त हठपूर्वक जोड़ दिये गए हैं, जिसे दार्शनिक सृष्टि से एवं मानव अभिज्ञता की सृष्टि से मैं सत्य नहीं समझता। मैं अब भी ईश्वर में विश्वास रखता हूँ एवं यह समझता हूँ कि आधुनिक विज्ञान की अभिव्यक्ति से क्रमश: भारतीय दर्शन-शास्त्र की पुष्टि होती जा रही है। (पृ० १४, चतुर्थ संस्करण की भूमिका)

निस्सन्देह भगतसिंह और उनके कई साथी कम्यूनिस्ट विचारधारा से प्रभावित थे, पर बाद में बटुकेश्वर दत्त, सदाशिव मलकापुरकर आदि इसे त्यागकर मानवतावादी बन गये थे। सम्भवत: यदि भगतसिंह जीवित रहते तो कम्यूनिस्टों की देशद्रोही गतिविधियों को देखकर वे भी इसे त्याग देते। फिर भी यह सत्य है कि भगतसिंह शुद्ध मानवतावादी थे जो महान लक्ष्य के लिए अपना बलिदान दे गये।

श्री हंसराज रहबर ने 'भगतसिंह : एक ज्वलन्त इतिहास' में लिखा है–"कम्युनिस्ट नेताओं की कथनी और करनी में जो अन्तर था, भगतसिंह और उनके साथियों ने उसे भली भांति समझ लिया था, इसलिए वे कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल नहीं हुए और इसीलिए नौजवान भारत सभा में उनके साथ जो संयुक्त मोर्चा बनाया था, वह ज्यादा दिन नहीं चल सका। कम्युनिस्ट नेताओं ने भगतसिंह और उनके साथियों की ख्याति से लाभ अवश्य उठाया, पर उन्होंने क्रान्ति का जो मार्ग प्रशस्त किया था, कम्युनिस्ट नेताओं में उस पर चलने का न साहस था और न बुद्धि। हुआ यह कि भगतसिंह के जो साथी जेलों से रिहा होकर कम्युनिस्ट पार्टी में आए, उन्होंने भी क्रांतिकारी भूमिका नहीं निभाई बल्कि नमक की खान में आकर नमक बन गए।"

१९२७ ई० में श्री जवाहर लाल नेहरू रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के सम्मेलन में भाग लेने गये और मार्क्सवादी रंग में रंगकर वहाँ से लौटे। उसी वर्ष मुम्बई में मजदूरों की हड़ताल को नेहरू जी ने समर्थन दिया। भारत के मजदूरों में आयी चेतना को नेहरू के नेतृत्व में सक्रिय वामपंथी कांग्रेसियों का दल आकर्षित कर रहा था। १९२९ में नेहरू जी ने तो 'सोवियत रूस' पुस्तक भी प्रकाशित की।

गाँधी जी के निकलने के बाद कांग्रेस में नेहरू जी का प्रभाव और वामपंथ विचारधारा हावी होने लगी। इसका स्पष्ट उदाहरण कांग्रेस के ४९ वें अधिवेशन में मिला, जो अप्रैल १९३६ में लखनऊ में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। नेहरू समर्थक समाजवादी गुट कांग्रेस के ५०वें अधिवेशन (फैजपुर महाराष्ट्र) तक बहुत बढ़ गया था। उसकी अध्यक्षता नेहरू जी ने की थी।

वामपंथी विचारधारा के बढ़ते जोर का दूसरा उदाहरण 'कांग्रेस समाजवादी दल' की स्थापना था। यह दल जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव तथा अशोक मेहता द्वारा १९३४ में स्थापित किया गया। इसका ध्येय कांग्रेस को समाजवादी दिशा की तरफ बढ़ाना था।

अपने उद्देश्य के लिए कम्युनिस्टों ने मजदूरों का उपयोग किया, इस सत्य को नेहरू जी भले ही न समझे हों, पर डॉ० अम्बेडकर समझ गये थे कि कम्युनिस्ट विचारधारा भारत के हित में नहीं है। इसलिए उन्होंने १९३६ में स्वतन्त्र मजदूर पार्टी की स्थापना की। इससे कम्युनिस्टों से उनका विवाद शुरू हो गया। वे भारतीय समाज को लेकर कम्युनिस्टों की बुनियादी सोच से सहमत नहीं थे। जनवरी १९३८ में मुम्बई में डॉ० अम्बेडकर ने कहा- 'कम्युनिस्ट विचारधारा से सम्बन्धित जितनी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं, वे सभी भारतीय कम्युनिस्ट नेताओं द्वारा पढ़ी गई किताबों से ज्यादा ही होंगी। कम्युनिस्ट कभी भी किसी समस्या का व्यावहारिक पक्ष नहीं देखता।... मेरा कम्युनिस्टों से सम्बन्धा रखना बिल्कुल संभव नहीं है। मैं कम्युनिस्टों का कटर दुश्मन हूँ।' (यात्रा के पदचिह्न, पृ०१७३)

८ अगस्त १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में नेहरू जी ने भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव रखा, जिसका अनुमोदन वल्लभ भाई पटेल ने किया। इस प्रस्ताव का विरोध तेरह सदस्यों ने किया, जिसमें १२ कम्युनिस्ट थे।

कम्युनिस्टों से हमदर्दी रखने वाले श्री प्रमोद कुमार 'भारत का स्वतंत्रता संग्राम' में लिखा- 'मुस्लिम लीग तथा भारत के कम्युनिस्टों ने अपने आपको इस आन्दोलन से दूर रखा था। आंदोलन की जीत जिन्ना के लिए कांग्रेस की जीत होती। इन्होंने भारत के मुसलमानों को इसमें भाग न लेने का निर्देश दिया था। कम्युनिस्टों ने भी ब्रिटेन के प्रति समझौतापरक रवैया अपना कर अपने राष्ट्रवादी चरित्र पर एक धब्बा लगा लिया।" (पृ.१११)

फिर भी नेहरू जी कम्युनिस्टों से अपना प्रेम निभाते रहे। जब नेता जी सुभाष भारत की स्वतंत्रता के लिए जापान की सहायता लेकर अंग्रेजों से लड़ रहे थे, तो वे कम्युनिस्ट ही थे, जो नेताजी को 'तोजो का कुत्ता' व 'जापान की कठपुतली' कहकर उनके भद्दे कार्टून छाप रहे थे। २२ फरवरी १९४९ को बी० टी० रणदिवे के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी ने भारतीय सत्ता पर अधिकार करने के लिए हथियारबन्द विद्रोह आरम्भ कर दिया, तो सरदार पटेल ने असंख्य लोगों की जान लेने वाले कम्युनिस्टों को जेल में डाल दिया। श्री एस० शंकर ने लिखा है-"लेकिन पटेल के निधन के बाद उन्हें (नेहरू जी द्वारा) ससम्मान बाहर लाया गया, इस भाव-भंगिमा के साथ मानो वे त्यागी, बलिदानी हों। इसी अन्दाज में कम्युनिस्ट पार्टी ने १९५२ में देश का पहला आम चुनाव लड़ा, जिसमें उनकी सफलता नेहरू द्वारा दिये गये वैचारिक सम्मान के कारण ही हुई। फिर जल्द ही १९५४ में स्वयं कांग्रेस ने भी 'समाजवाद' को अपना ध्येय घोषित कर दिया। ❑❑

# भगत सिंह के क्रांतिकारी विचारों के प्रेरणास्त्रोत– सरदार अर्जुन सिंह

—डॉ० विवेक आर्य (मो०–८०७६९८५५१७)

इस लेख को पढ़ने वाले ज्यादातर वे पाठक हैं जिन्होंने आजाद भारत में जन्म लिया। यह हमारा सौभाग्य है कि आज हम जिस देश में जन्मे हैं उसे आज कोई गुलाम भारत नहीं कहता, उपनिवेश नहीं कहता बल्कि संसार का एक मजबूत स्वतंत्र राष्ट्र के नाम से हमें जाना जाता है। इस महान भारत देश को आजाद करवाने में हजारों क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की आहुति आजादी के पवित्र यज्ञ में डाली तब कहीं जाकर हम आजाद हुए। भगतसिंह का नाम भारत देश की आजादी के आन्दोलन में एक विशेष महत्व रखता है। प्रथम तो भगतसिंह उन नौजवानों के लिए जिन्हें अंग्रेजों से भीख में आजादी माँगने में कोई रुची नहीं थी उनके लिए प्रेरणास्त्रोत्र बने। दूसरे १८४७ के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के असफल हो जाने के बाद अंग्रेजी सरकार द्वारा बड़ी निर्दयता से आजादी के दीवानों पर प्रहार किया था। उनका उद्देश्य था कि भारत देश की प्रजा के मन में अंग्रेज जाति की श्रेष्ठता और अपराजेय होने के भय को बैठा देना जिससे वे दोबारा आजादी प्राप्त करने का प्रयास न करे इस भय को मिटने में भी भगतसिंह की कुरबानी सदा याद रखी जाएगी। किसी भी व्यक्ति का महान बनने के लिए महान कर्म यानि कि तप करना पड़ता है और उस तप की प्रेरणा उसके विचार होते हैं। किसी भी व्यक्ति के विचार उसे ऊपर उठा भी सकते हैं उसे नीचे गिरा भी सकते हैं। भगत सिंह के जीवन में उन्हें कई महान आत्माओं ने प्रेरित किया जैसे करतार सिंह सराभा, भाई परमानन्द, सरदार अर्जुन सिंह, सरदार किशन सिंह आदि। सरदार अर्जुनसिंह भगतसिंह के दादा थे और स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनने के बाद वैदिक विचारधारा से प्रभावित हुए थे। सरदार अर्जुन सिंह उन महान व्यक्तियों में से थे जिन्हें न केवल स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनने का साक्षात् अवसर मिला अपितु वे आगे चलकर स्वामी जी की वैचारिक क्रांति के क्रियात्मक रूप से भागीदार भी बने। स्वामी दयानन्द के हाथों से उन्हें यज्ञोपवीत प्राप्त हुआ और उन्होंने आजीवन वैदिक आदर्शों का पालन करने का व्रत लिया। उन्होंने तत्काल माँस खाना छोड़ दिया और शराब को फिर जीवन भर मुंह नहीं लगाया। अब नित्य हवन उनका साथी और वैदिक संध्या उनके प्रहरी बन गए। समाज में फैले अन्धविश्वास जैसे मृतक श्राद्ध, पाखंड आदि के खिलाफ उन्होंने न केवल प्रचार किया अपितु अनेक शास्त्रार्थ भी किये।

१८९७ में अज्ञानी सिखों में अलगाववाद की एक लहर चल पड़ी। काहन सिंह के नाम से एक सिख लेखक ने 'हम हिन्दू नहीं' के नाम से पुस्तक लिखकर सिख पंथ को हिन्दू समाज से अलग दिखाने का प्रयास किया तो सरदार अर्जुनसिंह ने हमारे 'गुरु वेदों के पैरो (अनुयायी) थे' शीर्षक से उत्तर लिखा था। इस पुस्तक में उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहिब में दिए गए श्लोकों को प्रस्तुत किया जो वेदों की शिक्षाओं से मेल खाते थे और इससे यह सिद्ध किया कि गुरु ग्रन्थ साहिब की शिक्षाएँ वेदों पर आधारित हैं।

## सरदार अर्जुनसिंह का धार्मिक दृष्टिकोण

सरदार अर्जुन ने अपने ग्राम बंगा जिला

लायलपुर (पाकिस्तान) में गुरूद्वारे को बनाने में तो सहयोग किया और वे गुरुद्वारा में तो जाते थे पर कभी गुरु ग्रन्थ साहिब के आगे माथा नहीं टेकते थे। वे कहते थे कि गुरु साहिबान की शिक्षा पर चलना ही सही है। वे कहते थे कि मूर्ति पूजा की भांति ही यह पुस्तक पूजा है। वे ग्राम के बँड़े जमींदार थे, ग्राम के विकास के लिए उन्होंने कुएँ और धर्मशाला भी बनवाई। हर वर्ष अपने ग्राम में आर्यसमाज के प्रचारकों को बुला कर हवन और उपदेशकों के प्रवचन आदि करवाते थे जिससे ग्राम में छुआछूत, अन्धविश्वास और नशे आदि का कलंक सदा के लिए मिट जाये।

सन १९०९ में पटियाला रियासत में आर्यसमाज पर राजद्रोह का अभियोग अंग्रेज सरकार ने चलाया। निर्दोष आर्यसमाज के अधिकारियों और सदस्यों को बिना कारण जेल में बंद कर दिया गया। इस कदम का उद्देश्य सिखों और आर्यों में आपसी वैमनस्य को पैदा करना था व देसी रियासतों में से आर्यसमाज की जागरण क्रांति की मशाल को मिटा देना था। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस संकट की घड़ी में जब कोई भी वकील आर्यसमाज का केस लड़ने को तैयार न हुआ तो खुद ही आर्यसमाज के वकील के केस की पैरवी करी और कोर्ट में सिद्ध किया कि आर्यसमाज का उद्देश्य समाज का कल्याण करना है न कि राजद्रोह करना। इस मामले में अर्जुन सिंह भी सक्रिय हुए। अन्य आर्यो के साथ मिलकर उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहिब के ७०० ऐसे श्लोक प्रस्तुत करे जो कि वेदों की शिक्षा से मेल खाते थे। इस प्रकार सिख समाज और आर्य समाज में आपसी मधुर सम्बन्ध को बनाने में आप मील के पत्थर साबित हुए।

## सत्य मार्ग के तपस्वी

एक बार वे एक ऐसे विवाहोत्सव में शामिल हुए जहाँ एक सिख पुरोहित स्वामी दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश की आलोचना कर रहा था। अपने उसे चुनौती दी कि वह जिस कथन के आधार पर आलोचना कर रहा है, वह कथन ही सत्यार्थ प्रकाश में नहीं है। उस पुरोहित ने कहा कि यदि सत्यार्थ प्रकाश लाओगे तो में प्रमाण दिखा दूंगा। अर्जुन सिंह जी को उस पूरे गाँव में सत्यार्थ प्रकाश न मिला। आप तत्काल अपने गाँव वापस गए और अगले दिन सत्यार्थ प्रकाश लेकर वापिस आ गए। आलोचक उन्हें सत्यार्थ प्रकाश में कोई भी गलत प्रमाण न दिखा सका और माफी माँगकर पिण्ड छुड़ाया। ध्यान दीजिये अर्जुन सिंह जी का गाँव उस गाँव से करीब ६० मील की दूरी पर था। सत्य मार्ग पर चलते हुए जो कष्ट होता है उसे ही असली तप कहते हैं।

## पूरा कुटुंब क्रांति के मार्ग पर

स्वामी दयानन्द १८४७ के पश्चात पहले गुरु थे जिन्होंने स्वदेशी राज्य का समर्थन किया और विदेशी शासन का बहिष्कार करने का आवाहन किया। उनके इस जन चेतना के आह्वान का सरदार अर्जुन सिंह पर इतना प्रभाव पड़ा कि न केवल वे खुद आजादी के दीवानों की फौज में शामिल हुए बल्कि उनका समस्त कुटुम्ब भी इसी रास्ते पर चल पड़ा था। जब भगतसिंह और जगतसिंह आठ वर्ष के हुए तो अर्जुनसिंह जी ने अपने दोनों पोतों का यज्ञोपवीत पंडित लोकनाथ तर्कवाचस्पति (भारत के पहले अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा के दादा) के हाथों से करवाया और एक पोते को दायीं भुजा पर और दुसरे पोते को बायीं भुजा में भरकर यह संकल्प लिया- मैं इन दोनों पोतों को राष्ट्र की बलिवेदी के लिए दान करता हूँ। अर्जुन सिंह जी के तीनों लड़के पहले से ही देश के लिए समर्पित थे। उनके सबसे बड़े पुत्र और भगत सिंह के पिता किशन सिंह सदा हथकड़ियों की चौसर और बेड़ियों की शतरंज से खेलते रहे, उनके मंझले पुत्र अजित सिंह को तो देश निकला देकर माँडले भेज दिया गया, बाद में वे विदेश जाकर गदर पार्टी के साथ

जुड़कर कार्य करते रहे। उनके सबसे छोटे पुत्र स्वर्ण सिंह का जेल में तपेदिक से युवावस्था में ही देहान्त हो गया था। अपने दादा द्वारा देश हित में लिए गए संकल्प को पूरा करने के लिए, अपने पिता और चाचा द्वारा अपनाये गए कंटक भरे मार्ग पर चलते हुए भगत सिंह भी वीरों की भांति देश के लिए २३ मार्च १९३१ को २३ वर्ष की अल्पायु में फाँसी पर चढ़ कर अमर हो गए।

भगत सिंह के मन में उनके दादा सरदार अर्जुन सिंह जी द्वारा बोए गए क्रांति बीज आर्य क्रांतिकारियों भाई परमानन्द, करतार सिंह सराभा, सूफी अम्बा प्रसाद और लाला लाजपत राय जैसे क्रांतिकारियों द्वारा दी गयी खाद से पल्लवित होकर जवान होते होते देश को आजाद करवाने की प्रतिज्ञारूपी विशाल बरगद बन गए। यह पूरा परिवार आर्यसमाज की प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित था, जिसका श्रेय सरदार अर्जुन सिंह को जाता है ।

## साम्यवादी लेखों द्वारा अन्याय

'मैं नास्तिक क्यूँ हूँ' भगत सिंह की ये छोटी सी पुस्तक साम्यवादी लाबी द्वारा आज के नौजवानों में खासी प्रचारित करी जाती है। जिसका उद्देश्य भगतसिंह के जैसा महान बनाना नहीं अपितु नास्तिकता को बढावा देना है। कुछ लोग इसे कन्धा भगतसिंह का और निशाना कोई और भी कह सकते हैं। मेरा एक प्रश्न उनसे यह है कि क्या भगतसिंह इसलिए महान थे कि वे नास्तिक थे ? अथवा इसलिए कि वे देश भक्त थे। सभी कहेंगे कि इसलिए कि वे देशभक्त थे। फिर क्या यह नास्तिकता का प्रोपगंडा अनजान नौजवानों को सत्य से अनभिज्ञ रखने के समान नहीं है तो और क्या है। अगर किसी भी क्रांतिकारी की अध्यात्मिक विचार-धारा हमारे लिए आदर्श है, तो भगतसिंह के अग्रज पंडित रामप्रसाद बिस्मिल जो न केवल कट्टर आर्यसमाजी थे, ब्रह्मचर्य के पालन के क्या-क्या फायदे होते हैं उसके साक्षात् प्रमाण थे, जिनका जीवन सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने से परिवर्तित हुआ था क्यूँ हमारे लिए आदर्श और वरण करने योग्य नहीं हो सकते। आर्यसमाज मेरी माता के समान है और वैदिक धर्म मेरे लिए पिता तुल्य है, ऐसा उद्घोष करने वाले लाला लाजपतराय क्यूँ हमारे लिए वरणीय नहीं हो सकते?

मेरा इस विषय को यहाँ उठाने का मंतव्य वीर भगत सिंह के बलिदान को कम आंकने का नहीं है बल्कि यह स्पष्ट करना है कि भारत माँ के चरणों में आहुति देने वाला हर क्रांतिकारी हमारे लिए महान हैं। उनकी वीरता और देश सेवा हमारे लिए वरणीय हैं। पहले तो भगतसिंह की क्रांतिकारी विचारधारा और देशभक्ति का श्रेय नास्तिकता को नहीं अपितु उनके पूर्वजों द्वारा माँ के दूध में पिलाई गयी देश भक्ति की लोरियाँ हैं, जिनका श्रेय महर्षि दयानन्द को जाता हैं। दूसरे आजादी की लड़ाई में अधिकांश गर्म दल और ८० के करीब नर्म दल आर्यसमाज की धार्मिक विचारधारा से प्रेरित था इसलिए महर्षि दयानन्द को भारत देश को आजाद करवाने का उद्घोष वाहक मानना चाहिए।

**शहीद की माँ को प्रणाम कर गयी,**
**पैदा तुझे उस कोख का एहसान है ।**
**सैनिकों के रक्त से आबाद हिन्दुस्तान है ।।**
**तिलक किया मस्तक चूमा बोली ये ले**
**कफन तुम्हारा ।**
**मैं माँ हूँ पर बाद में,**
**पहले बेटा वतन तुम्हारा ।।**
**धन्य है मैया तुम्हारी भेंट में बलिदान में ।**
**झुक गया है देश उसके दूध के सम्मान में ।।**
**दे दिया है लाल जिसने पुत्र मोह छोड़कर ।**
**चाहता हूँ आंसुओं से पांव वो पखार दूं ।।**
**ए शहीद की माँ आ तेरी मैं आरती उतार लूं ।।**

❑❑

॥ ओ३म् ॥

# क्या इस जन्म से पहले हमारा अस्तित्व था और मृत्यु के बाद भी रहेगा?

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : ०९४१२९८५१२१)

**हम कौन हैं? इस प्रश्न पर जब हम विचार करते हैं, तो इसका उत्तर हमें वेद एवं वैदिक साहित्य में ही मिलता है जो ज्ञान से पूर्ण, तर्क एवं युक्तिसंगत तथा सत्य है। उत्तर है कि हम मनुष्य शरीर में एक जीवात्मा के रूप में विद्यमान हैं। हमारा शरीर हमारी आत्मा का साधन है। जिस प्रकार किसी कार्य को करने के लिये उसके लिये उपयुक्त सामग्री व साधनों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमारी आत्मा को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह मनुष्य शरीर मिला है। शरीर केवल सुख व दु:ख भोगने का ही आधार नहीं है, अपितु यह जीवात्मा के साध्य ईश्वर की प्राप्ति के लिये है जिसे साधना के द्वारा प्राप्त व सिद्ध किया जाता है।**

हमारे जीवन का लक्ष्य वा साध्य ईश्वर को जानना, उसे प्राप्त करना, उसका साक्षात्कार करना तथा सद्कर्मों को करके जन्म व मरण के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करना है। मोक्ष जीवात्मा की दु:ख रहित तथा आनन्द से पूर्ण अवस्था का नाम है। मोक्ष में जीवात्मा को लेशमात्र भी दु:ख नहीं होता। वह आनन्द से युक्त रहती है। सुखपूर्वक समय व्यतीत करती है। उसे वृद्धावस्था प्राप्त होने, किसी प्रकार का रोग व दुर्घटना होने तथा मृत्यु व पुनर्जन्म का दु:ख नहीं सताता। उसे नरक व नीच प्राणी योनियों में जन्म लेने की चिन्ता भी नहीं सताती। मोक्ष अवस्था में सभी जीव ज्ञान व बल से युक्त रहते हैं जिससे वह दु:खों से मुक्त तथा सुखों व आनन्द से युक्त रहते हैं। परमात्मा व मोक्ष ही जीवात्मा के लिये साध्य है जिन्हें जीवात्मा मनुष्य जन्म लेकर वेदाध्ययन व वेदज्ञान को प्राप्त कर तथा वेदानुकूल कर्मों को करके सिद्ध व प्राप्त करती है। शरीर न हो और यदि वेदज्ञान व ऋषियों के ग्रन्थ न हों, तो मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को न तो जान सकता है और न ही प्राप्त कर सकता है। अत: जीवात्मा को मानव शरीर परमात्मा की अनुकम्पा व दया के कारण मिला है जो हमारे माता-पिता के समान व उनसे कहीं अधिक हमारे हितों का ध्यान रखते हैं व हमें सुख प्रदान कराते हैं। इस कारण से मनुष्यों के लिये केवल सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, अनादि, नित्य, दयालु एवं न्यायकारी परमात्मा ही उपासनीय, ध्यान, चिन्तन व जानने योग्य है। जो मनुष्य इसके लिये प्रयत्न नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ एवं निरर्थक बन कर रह जाता है।

**हम शरीर नहीं अपितु एक चेतन जीवात्मा हैं, इसका अनुभव प्रत्येक मनुष्य करता है। भाषा के प्रयोग की दृष्टि से भी आत्मा व शरीर पृथक पृथक सत्तायें सिद्ध होती हैं। हम कहते हैं कि हमारा शरीर, मेरा हाथ, मेरा सिर, मेरी आँख आदि आदि। मैं व मेरा में अन्तर होता है। मैं मेरा नहीं होता। मेरा शरीर मुझ आत्मा का है। अत: आत्मा व शरीर पृथक हैं। इसलिये हम शरीर के लिये मैं तथा आत्मा का प्रयोग न कर मेरा शरीर का प्रयोग करते हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि**

आत्मा एक चेतन सत्ता व पदार्थ है। हमारा शरीर व इसके सभी अंग जड़ वा निर्जीव हैं। शरीर की मृत्यु हो जाने पर शरीर क्रिया रहित व चेतना विहीन हो जाता है। शरीर को काटें या अग्नि में जलायें, उसको दु:ख नहीं होता परन्तु जीवित अवस्था में एक कांटा भी चुभे तो पीड़ा होती व आँख में आंसू आते हैं। इससे आत्मा नाम की शरीर से पृथक सत्ता सिद्ध होती है जो शरीर में रहते हुए सुख व दु:ख का अनुभव करती वा कराती है व जिसके शरीर से निकल जाने अर्थात् मृत्यु हो जाने पर सुख व दु:ख की अनुभूति होनी बन्द हो जाती है। अत: आत्मा को जानना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इसको जानकर ही हम अपने कर्तव्यों के महत्व को समझ सकेंगे और ऐसा कोई काम नहीं करेंगे जिसका परिणाम दु:ख व सन्ताप हो।

वैदिक साहित्य में दु:ख के कारणों की चर्चा की गई है। इस जन्म में हमें जो दु:ख मिलते हैं वह हमारे पूर्वजन्म के वह कर्म होते हैं जिनका फल हम पिछले जन्म में भोग नहीं सके। कारण था कि भोग से पूर्व ही वृद्धावस्था व मृत्यु आ गई थी। इस जन्म में दूसरे प्रकार के दु:ख इस जन्म के क्रियमाण कर्मों के कारण भी होते हैं। एक व्यक्ति स्वार्थ व लोभवश चोरी करता है जिसका दण्ड उसे न्याय व्यवस्था से मिलता है। इससे उसे दु:ख होता है। इसी प्रकार से जीवात्मा वा मनुष्य को आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दु:ख भी होते हैं जो हमारे कर्मों पर आधारित न होकर देश, काल व परिस्थितयों पर आधारित होते हैं। इन सब प्रकार के दु:खों से बचने के लिये हमें वेदज्ञान की प्राप्ति कर सद्कर्मों यथा ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र देवयज्ञ, इतर पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्वदेवयज्ञ करने के साथ परोपकार व दान आदि को करना होता है। ऐसा करके हम भविष्य में कर्मों के कारण होने वाले दु:खों से बच सकते हैं। हमारी आत्मा अनादि, नित्य, अविनाशी, अमर तथा सनातन सत्ता है। यह सदा से है और सदा रहेगी। इसलिये यह अनादिकाल से जन्म व मरण के बन्धनों में फंसती रहती है व मनुष्य जन्म प्राप्त कर साधना करके मुक्त होकर मोक्षावधि को प्राप्त होकर उसके बाद पुन: संसार में जन्म-मरण के चक्र में आवागमन करती रहती है। इस कर्म-फल रहस्य को वेद, सत्यार्थप्रकाश, उपनिषद् तथा दर्शन आदि ग्रन्थों को पढ़कर जाना जा सकता है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने से हम इस संसार सहित ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरूप से परिचित हो सकते हैं तथा दु:खों को दूर करने व भविष्य में अशुभ व पाप कर्मों के कारण होने वाले दु:खों से भी बच सकते हैं।

**हमारी आत्मा अनादि व नित्य है। इस कारण से इसका अस्तित्व सदा से है और सदा रहेगा। आत्मा नाशरहित है। विज्ञान का नियम है कि अभाव से भाव तथा भाव से अभाव उत्पन्न नहीं होता। भाव पदार्थों में संसार में केवल तीन ही पदार्थ हैं। यह पदार्थ हैं-ईश्वर, जीव एवं प्रकृति। इन तीन पदार्थों की कभी उत्पत्ति नहीं हुई। यह सदा से हैं और सदा रहेंगे। परमात्मा व जीवात्मा अपने स्वरूप से अविकारी पदार्थ है। ईश्वर व जीवात्मा में विकार होकर कोई नया पदार्थ कभी नहीं बनता। प्रकृति त्रिगुणात्मक है जिसमें सत्व, रज व तम यह तीन गुण होते हैं। इस प्रकृति व गुणों में विषम अवस्था उत्पन्न होकर ही यह दृश्यमान जड़ जगत जिसे संसार कहते हैं, बनता है। ईश्वर, जीव तथा प्रकृति की सत्ता स्वयंभू अर्थात् अपने अस्तित्व से स्वयं है। यह तीनों पदार्थ किसी प्राकृतिक पदार्थ से बने हुए नहीं हैं। इन तीनों पदार्थों का कोई अन्य पदार्थ उपादान कारण नहीं है। यह तीनों**

मौलिक पदार्थ हैं।

यह अनादि काल से अस्तित्व में हैं। इसी कारण से ईश्वर व जीवात्मा आदि सभी तीनों पदार्थ अनादि काल से हैं। अतः हमारी आत्मा भी अनादि काल से संसार में है। यह चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, नित्य, अविनाशी, जन्म व मरण के बन्धनों में फंसी हुई, कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में परतन्त्र सत्ता है। ईश्वर सर्वज्ञ व सब सत्य विद्याओं से युक्त सत्ता है। ईश्वर ही जीवों को सुख देने व उनके पूर्वजन्मों के कर्मो का फल भुगतने के लिये इस संसार की रचना व पालन करते हैं। अनादि काल से सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय का क्रम निरन्तर चलता रहता है। इस रहस्य को जान कर ही वेदों के अध्येता, ऋषि व विद्वान आदि लोभ में नहीं फंसते थे और दुःखों की सर्वथा निवृत्ति के लिये ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र यज्ञ, परोपकार एवं दान आदि सहित सत्योपदेश व वेदप्रचार आदि का कार्य करते हुए दुःखों से मुक्ति के लिए मोक्ष प्राप्ति के उपाय करते थे। अब भी वेदानुगामी विद्वानों एवं हम सबको भी वेद में सुझाये पंच महायज्ञों का ही पालन करना है। इसी से हमारा त्राण व रक्षा होगी। इसकी उपेक्षा से हम मोह व लोभ को प्राप्त होंगे जिनका परिणाम दुःख व बार बार मृत्यु रूपी दुःखों को प्राप्त होना होता है। इन वैदिक सिद्धान्त व मान्यताओं को हमें जानना चाहिये। यदि नहीं जानेंगे तो हम कभी भी दुःखों से बच नहीं सकते।

**ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति अनादि, नित्य, अमर व अविनाशी सत्तायें हैं। इस कारण इन तीनों पदार्थों का अतीत में अस्तित्व रहा है तथा भविष्य में सदा सदा के लिये रहने वाला है। ईश्वर जीवों के लिये अतीत व वर्तमान में सृष्टि बनाकर कर जीवों को जन्म देकर सुख व कर्मों का फल देते आये हैं और आगे भविष्य में भी सदा ऐसा करते रहेंगे। आत्मा की आयु अनन्त काल की है। इस दृष्टि से हमारा यह मनुष्य जन्म जो मात्र लगभग एक सौ वर्षों में सिमटा हुआ है, इसका आयु काल प्रायः नगण्य ही है। इस आयु में भी मनुष्य का अधिकांश समय बाल अवस्था, सोने तथा अन्य अन्य कार्यों में लग जाता है। शेष समय धन कमाने व सुख की सामग्री को एकत्र करने व बनवाने में लग जाता है। बहुत से लोग इसी बीच रोगग्रस्त होकर अल्पायु में ही मृत्यु की गोद में समा जाते हैं। अतः इस तुच्छ अवधि के जीवन काल मे हमें अपने मोह व लोभ पर विजय पानी चाहिये।**

इसके साथ ही हमें सत्यार्थप्रकाश, वेद एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन कर अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिये और दुःख निवारण के उपाय ज्ञान प्राप्ति व सद्कर्मों को करके करने चाहिये। यही जीवन पद्धति श्रेष्ठ व उत्तम है। इससे इतर कोई भी जीवन शैली जो हमें सुखों की प्राप्ति के लिए केवल धनोपार्जन करने के लिये प्रेरित तथा वेदोक्त ईश्वरोपासना आदि की उपेक्षा करती है, सर्वांश में उत्तम व लाभप्रद नहीं हो सकतीं। इन बातों व तथ्यों को हमें जानना व समझना चाहिये। इसी में हमारा हित है। इनकी उपेक्षा हमारा भविष्य दुःखद व निराशाजनक बना सकते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण तथा वेदों वाले ऋषि दयानन्द के उदाहरण व उनके जीवन चरित्रों को हमें अपने ध्यान व विचारों में स्थापित करना चाहिये। उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। ऐसा करके हमारा जीवन आत्मा के जन्म के उद्देश्य को पूरा करने में साधक व सार्थक होगा। यह सत्य एवं प्रामाणित है कि इस जन्म से पूर्व भी हमारा अस्तित्व था, यदि न होता तो हमारा जन्म क्योंकर होता? इस जन्म में मृत्यु होने पर भी हमारा अस्तित्व बना रहेगा। मृत्यु का होना आत्मा का अभाव व नाश नहीं है, अपितु यह पुनर्जन्म का कारण व आधार है। अतः इनको ध्यान में रखकर ही हमें अपने जीवन को जीना चाहिये। ❑❑

# सत्यार्थ प्रकाश का संक्षिप्त परिचय

-डॉ० रवीन्द्र अग्निहोत्री

**[ गतांक से आगे ]**

**(भाग-२ )**

पुस्तक में दो भाग हैं-पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में दस अध्याय हैं और उत्तरार्ध में चार। इस प्रकार कुल १४ अध्याय हैं जिन्हें 'समुल्लास' कहा है। पुस्तक के अंत में "स्व मन्तव्यामन्तव्य प्रकाश" (मैं कौन सी बातें मानता हूँ, और कौन सी नहीं) शीर्षक से स्वामी जी ने धर्म से सम्बन्धित ५१ ऐसे विषयों की वैदिक मान्यताओं के आधार पर बहुत संक्षेप में व्याख्या की है जिनके बारे में समाज में बहुत भ्रम फैला हुआ है । जैसे-ईश्वर, सगुण-निर्गुण स्तुति, वेद, तीर्थ, मुक्ति, मुक्ति के साधन, प्रारब्ध (भाग्य), पुरुषार्थ, गुरु, स्वर्ग, नरक, प्रार्थना, उपासना, आदि। इसे हम इस पुस्तक का परिशिष्ट भी कह सकते हैं, और पूरी पुस्तक का सारांश भी। इसे यदि ठीक से समझ लिया जाए तो महर्षि के मन्तव्य को भी ठीक से समझा जा सकता है।

पूर्वार्ध के दस अध्यायों में मानव जीवन का निर्माण करने वाली वैदिक विचारधारा, आश्रम व्यवस्था (अर्थात ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास की व्यवस्था), शिक्षा-दीक्षा, राजनीतिक व्यवस्था, दार्शनिक मान्यताओं, साधना पद्धति, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि की विवेचना की गई है जो किसी विशेष 'पन्थ' के अनुयायियों के लिए नहीं, मानव मात्र के स्वीकार करने और आचरण करने योग्य हैं। उत्तरार्ध के चार अध्यायों में भारतवर्ष में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों आदि की ऐसी मान्यताओं की समीक्षा की गई है जिनके कारण समाज में अन्धविश्वास, आलस्य और अज्ञान फैला है। स्वामी जी ने यह समीक्षा पूरी सदाशयता के साथ इस प्रकार की है जिससे अन्धविश्वास दूर करने की सामान्य जन को भी प्रेरणा मिले। उनके जीवनकाल में विभिन्न मतावलंबी उनकी सदाशयता से कितने प्रभावित हुए इसका एक उदाहरण है देश की पहली आर्यसमाज की स्थापना जो मुंबई में एक पारसी सज्जन डॉ० माणेक जी अदेरजी की कोठी में हुई, जिसके प्रधान और मंत्री जैन परिवार के युवक (क्रमशः गिरधरलाल दयालदास कोठारी और पानाचंद आनंदजी पारेख) बने, और जब इस भवन का विस्तार करने का निश्चय किया गया तो सर्वाधिक दान (पांच हजार रु.) एक मुस्लिम व्यापारी (सेठ हाजी अलारखिया रहमतुल्ला सोनावाला) ने दिया। जिन लोगों ने किसी भी कारण से अभी तक यह ग्रंथ नहीं पढ़ा है, उनकी सुविधा के लिए इसके प्रत्येक समुल्लास का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है ।

## समुल्लासों का परिचय

१.० भारतीय समाज का सबसे बड़ा अंध-विश्वास 'बहु-देवतावाद' है । अतः स्वामी जी ने पहले ही समुल्लास में यह स्पष्ट किया है कि-

१.१ ईश्वर एक है, और उसका सर्वोत्तम एवं सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम "ओ३म्" है क्योंकि इस एक शब्द से उसकी अनेक शक्तियों का एक साथ पता चल जाता है।

१.२ वेदों में तथा अन्य वैदिक साहित्य में उसी एक परमात्मा के लिए अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, शिव आदि अनेक नामों का प्रयोग किया गया है। इन शब्दों के आम बोलचाल में दूसरे अर्थ भी होते हैं। अतः प्रसंग के अनुसार इनका अर्थ समझना चाहिए । जैसे, "अग्नि" शब्द का प्रयोग जब स्तुति, प्रार्थना, उपासना के प्रसंग में किया

जाता है, तब इसका अर्थ "परमात्मा" होता है , पर जब भौतिक पदार्थ के प्रसंग में किया जाता है, तब इसका अर्थ "आग" होता है।

१.३ हम सब जानते हैं कि परमात्मा के गुण और काम असंख्य हैं, इसीलिए उसके नाम भी असंख्य हैं। इन असंख्य नामों में से एक सौ नामों की स्वामी जी ने व्युत्पत्ति (etymology) बताकर और वेद एवं अन्य वैदिक साहित्य से प्रमाण देकर यह स्पष्ट किया है कि (प्राण, अक्षर, पृथ्वी, अन्न, जल, आकाश, वायु, नारायण, मंगल, शुक्र, ब्रह्मा, गणेश, महादेव, शक्ति, लक्ष्मी, शिव, ज्ञान, निराकार, यम, धर्मराज जैसे) विभिन्न शब्दों का अर्थ वही एक परमात्मा किस प्रकार है। शब्द संस्कृत के हैं, अत: उनकी व्युत्पत्ति बताने के लिए संस्कृत की धातुओं, प्रत्ययों, उपसर्गों, रूपों आदि व्याकरण की बातों का उपयोग किया गया है । इसके अतिरिक्त यह विषय भी दार्शनिक है । इसलिए संस्कृत न जानने वाले लोगों के लिए भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से यह अध्याय थोड़ा कठिन अवश्य है, पर एक ही परमात्मा के अनेक नाम क्यों हैं, यह समझने के लिए इस अध्याय का विशेष महत्व है।

इसके बाद स्वामी जी ने आगामी चार समुल्लासों में मानव जीवन की योजना पर विचार किया है ।

२.० दूसरे समुल्लास में बच्चों की शिक्षा और इस सम्बन्ध में माता, पिता एवं अध्यापक के कर्तव्यों की चर्चा की है ।

२.१ स्वामी जी ने बच्चों की शिक्षा का प्रारम्भ गर्भाधान से ही बताया है। अत: आवश्यक है कि माता-पिता गर्भाधान से पूर्व ही अपने भोजन, दिनचर्या, विचारों आदि को सात्विक बनाएं, गर्भावस्था के दौरान गर्भस्थ शिशु और माँ दोनों की शारीरिक-मानसिक स्थिति का ध्यान रखें, जन्म हो जाने पर उन सभी बातों का ध्यान रखें जो स्वास्थ्य रक्षा और आयुर्वेद (अर्थात चिकित्सा विज्ञान) की दृष्टि से आवश्यक हों।

२.२ जब बच्चा बोलना शुरू करे तो स्पष्ट उच्चारण की शिक्षा पर ध्यान दें ।

२.३ फिर ठीक से भोजन करने, आचार, व्यवहार, नित्य प्रति के कर्तव्य पालन आदि की शिक्षा दें ।

२.४ स्वामी जी ने समझाया है कि भूत-प्रेत आदि की कपोलकल्पित बातों से बच्चों के कोमल मन दूषित नहीं करने चाहिए ।

२.५ जन्मपत्री, फलादेश, भविष्य कथन, शकुन विचार जैसे पाखंडों की निस्सारता स्पष्ट करते हुए उन्होंने मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण मन्त्र-यंत्र-तंत्र आदि अंधविश्वासों के प्रति भी सावधान किया है।

२.६ बच्चों को अच्छे संस्कार देने , शिष्टाचार की शिक्षा देने, सुभाषित-सूक्तियाँ याद कराने में उन्होंने माता-पिता और गुरु की भूमिका पर विशेष बल दिया है। साथ ही, उन्होंने वैदिक परम्परा के अनुरूप बच्चों को 'विवेकशील' बनाने पर बल दिया है ताकि अच्छे-बुरे का निर्णय वे स्वयं कर सकें (इस दृष्टि से स्वामी जी ने एक पृथक पुस्तक 'व्यवहारभानु' नाम से भी लिखी है)। वैदिक शिक्षा में बल मतारोपण (indoctrination) पर नहीं, बल्कि मेधावी बुद्धि विवेक विकसित करने पर दिया जाता है । इसीलिए गुरु यहाँ तक कहता है कि– **"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि"** (तैत्तिरीय उपनिषद, १/११) अर्थात जो हमारे अच्छे धर्मयुक्त कर्म हैं, उन्हें ही ग्रहण करना, यदि कोई दुष्टकर्म हो तो उसे मत अपनाना। माता-पिता के लिए आवश्यक है कि बच्चों के सामने शुरू ही से परमात्मा के सही स्वरूप की चर्चा करें और उसी की उपासना करें । मद्य-माँस आदि के सेवन से दूर रहें। उन्होंने माता-पिता का कर्तव्य कर्म और परम धर्म यही

बताया है कि संतान को तन-मन-धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त बनाएं।

३.० तीसरे समुल्लास में शिक्षा की व्यवस्था, शास्त्रों के अध्ययन की विधि आदि पर विचार किया है और प्रत्येक कार्य के लाभों का तार्किक ढंग से विश्लेषण किया है। स्वामी जी ने बताया है कि–

३.१ लड़के-लड़कियों की शिक्षा व्यवस्था अलग-अलग होनी चाहिए।

३.२ शिक्षा सबके लिए अनिवार्य होनी चाहिए और एक समान होनी चाहिए।

३.३ विद्यालय में धन या अन्य किसी आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए, सबके साथ एक सा व्यवहार होना चाहिए।

३.४ बच्चों को सबसे पहले गायत्री मंत्र अर्थ सहित याद कराएँ जिसमें कहा गया है कि परमात्मा हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों में प्रेरित करे। फिर संध्या करना (जिसमें प्राणायाम करना भी शामिल है), अग्निहोत्र (हवन) करना आदि सिखाएं। ब्रह्मचर्य का पालन करना सिखाएं। महर्षि पतंजलि के बताए अष्टांग योग के यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाधयाय, ईश्वर प्रणिधान) का अभ्यास कराएँ।

३.५ सत्य-असत्य के निर्णय के लिए गौतम ऋषि के न्याय दर्शन एवं अन्य दर्शनों में बताए प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव, अभाव) का सहारा लेने का अभ्यास कराएं।

३.६ स्वाध्याय की आदत डालें।

३.७ शिक्षा सभी विषयों की (ज्ञान, विज्ञान, आयुर्वेद, स्थापत्य, दर्शन, विभिन्न कलाओं-कौशलों आदि की) होनी चाहिए, केवल कुछ विषयों की नहीं। यह तभी संभव है जब "ऋषियों" के बनाए ग्रंथों से अध्ययन किया जाए क्योंकि ये ग्रन्थ इस प्रकार लिखे गए हैं कि कम समय में अधिकतम लाभ मिल सके। स्वामी जी ने अनेक विषयों के कतिपय ग्रंथों के नाम भी बताए हैं।

३.८ कुछ लोगों ने वेदों के अध्ययन के अधिकार से स्त्रियों और शूद्रों को वंचित कर रखा है, उसका विरोध करते हुए स्वामी जी ने प्रमाण देते हुए बताया है कि सदा से वेद सभी लोगों के लिए रहे हैं और उनका अध्ययन करने का अधिकार सबका है।

४.० चौथे समुल्लास में गृहस्थ आश्रम के दायित्वों पर विचार किया गया है।

४.१ स्वामी जी ने इस आश्रम को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है।

४.२ बाल विवाह, अनमेल विवाह, वर-वधू की रुचि के विपरीत विवाह आदि का निषेध करते हुए उन्होंने विवाह के लिए गुण-शील-रूप-आयु आदि की समानता पर बल दिया है। इसे वे इतना महत्वपूर्ण मानते हैं कि कहा है, चाहे लड़के-लड़की जन्म भर कुंवारे रहें, पर असमान गुण-शील-स्वभाव वालों का विवाह कभी नहीं होना चाहिए। साथ ही उन्होंने विवाह के सम्बन्ध में माता-पिता से अधिक महत्व लड़के-लड़की की इच्छा एवं सहमति को देते हुए देश की प्राचीन "स्वयंवर" प्रथा का समर्थन किया है।

४.३ विवाह के सम्बन्ध में हमारे समाज में "जाति" को विशेष महत्व दिया जाता है, पर स्वामी जी ने मध्य युग में विकसित हुई इस "जन्मना जाति प्रथा" का विरोध किया है और अपने देश की प्राचीन गुण-कर्म-स्वभाव वाली वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है। इस वर्ण व्यवस्था में ही यह संभव है कि जन्म देने वाले माता-पिता का वर्ण और संतान का वर्ण अलग-अलग हो। विभिन्न वर्णों के गुण-कर्मों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि जिसे "द्विजत्व"

कहते हैं वह विशिष्ट "संस्कारों" अर्थात गुणों से आता है, किसी परिवार में जन्म लेने से नहीं (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण को "द्विज" भी कहते हैं, और जिन गुणों के कारण इन्हें 'द्विज' माना जाता है उन्हें द्विजत्व कहते हैं)।

४.४ संतान का पालन-पोषण करना गृहस्थ का प्रथम कर्तव्य है। इसके लिए समय-समय पर विभिन्न औपचारिक संस्कार भी करने चाहिए क्योंकि ये संस्कार बच्चे को और माता-पिता को अपने दायित्वों की याद दिलाते हैं और उन्हें पूरा करने की प्रेरणा देते हैं।

४.५ बच्चों को सुशिक्षा देनी चाहिए। इसके लिए परिवार में सुख शान्ति का वातावरण होना चाहिए। यह तभी संभव है जब पति-पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट हों और स्त्रियों का परिवार एवं समाज में भरपूर सम्मान हो।

४.६ गृहस्थियों को "पंच महायज्ञ" अवश्य करने चाहिए अर्थात ब्रह्मयज्ञ (संध्या और स्वाध्याय), देव यज्ञ (अग्निहोत्र), पितृ-यज्ञ (माता-पिता आदि की समुचित देखभाल एवं सेवा), अतिथि यज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ (गृहस्थ पर आश्रित प्राणियों की देखभाल-सेवा)। गृहस्थियों के सहारे ही अन्य आश्रमवासियों (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी) का जीवन चलता है। अतः गृहस्थियों को अपने दायित्वों का सम्यक ध्यान रखना चाहिए।

५.० पांचवें समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की आवश्यकता और इन आश्रम-वासियों के कर्तव्यों की चर्चा करते हुए यह बताया है कि-

५.१ सामान्य रूप से ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ और फिर संन्यासाश्रम में प्रवेश करना चाहिए, पर जो लोग तीव्र वैराग्यवान हों, सांसारिक सुखों से विमुख हों, लोक मंगल और ईश्वर चिंतन के लिए पूर्णतया समर्पित हों, ब्रह्मचर्यपूर्वक रह सकते हों, वे ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद सीधे संन्यासाश्रम में भी प्रवेश कर सकते हैं।

५.२ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने पर व्यक्ति अपने को पुत्रेषणा (संतान की इच्छा/यौन संतुष्टि), वित्तेषणा (धन की इच्छा) और लोकेषणा (समाज में यश-प्रसिद्धि पाने की इच्छा) से मुक्त करने का प्रयास करे।

५.३ संन्यासाश्रम में तो वही व्यक्ति प्रवेश करे जो इनसे मुक्त हो जाए, जो विद्वान हो, धार्मिक हो, परोपकार प्रिय हो। संन्यासी का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए-सभी प्राणियों के हित के लिए काम करना, आत्मशुद्धि करना और ईश्वर का चिंतन करना। संन्यासी अपनी इन्द्रियों पर संयम रखे, विद्या और धर्म के प्रचारार्थ सर्वत्र विचरण करे। निंदा-स्तुति, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि में समान रहे। मनुस्मृति में बताए धर्म के दस लक्षणों (धैर्य रखना, क्षमा करना, मन पर नियंत्रण रखना, चोरी न करना, स्वच्छ रहना, इन्द्रियों को संयमित रखना, बुद्धिमत्तापूर्वक काम करना, विद्याभ्यास करते रहना, सत्याचरण करना, और क्रोध न करना) का सदा पालन करे। जो लोग यह सोचते हैं कि संन्यासी को कुछ भी नहीं करना है, बस ऐसे ही निरुद्देश्य घूमते रहना है, उसका विरोध करते हुए स्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि संन्यासी लोकोपकार के लिए ही अपने को समर्पित करता है। अतः उसे विद्या, धर्म, सत्य और न्याय के लिए निरंतर काम करना चाहिए। ❑❑

- **वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।** —महर्षि दयानन्द

| | | |
|---|---|---|
| आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७<br>Post in Delhi R.M.S<br>०५-११/११/२०२३<br>भार ४० ग्राम | नवम्बर २०२३ | रजिस्टर्ड नं० DL (DG-11)/8029/2021-23<br>लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२१-२३<br>Licenced to post without prepayment<br>Licence No. U (DN) 144/2021-23 |


## पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएँ, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

—दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८


भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष एवं तार्किक समीक्षा के लिए
उत्तम कागज, मनमोहक जिल्द एवं सुन्दर आकर्षण मुद्रण
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

# सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

| प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23x36%16 | मुद्रित मूल्य ₹60 | प्रचारार्थ ₹40 |
|---|---|---|
| विशेष संस्करण (सजिल्द) 23x36%16 | ₹100 | ₹60 |
| पॉकेट संस्करण | ₹80 | ₹50 |
| विशिष्ट पॉकेट संस्करण | ₹150 | ₹100 |
| स्थूलाक्षर (सजिल्द) 20x30%8 | ₹200 | ₹120 |
| उपहार संस्करण | ₹1100 | ₹750 |
| सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी अजिल्द | रु. २५०/- | रु. १६०/- |
| सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी सजिल्द | रु. ३००/- | रु. २००/- |

प्रचारार्थ मूल्य पर कोई शुल्क नहीं

कृपया एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द जी की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें..

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-6
Ph : 011-43781191, 09650522778
E-Mail : aspt.india@gmail.com


छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में ..................

ग्राम ..................

डा० ..................

जिला ..................




मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।